भक्ति-काव्यामृत

भूमिकादि सहित

म० म० डा० लक्ष्मीधर शास्त्री

एस. चन्द एण्ड कम्पनी
पुस्तक प्रकाशक
फव्वारा, देहली

भक्ति-काव्यामृत

(भूमिकादिसहित)

लेखक तथा संपादक

महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मीधर शास्त्री

एम. ए., एम. ओ. एल., पी. एच., डी.,

मुख्याध्यापक हिन्दी तथा संस्कृत विभाग

दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली

प्रकाशक

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

चांदनी चौक, दिल्ली

तृतीय बार

मूल्य सवा रुपया

स्वतन्त्र-भारत
की
सेवा में सश्रद्धा
समर्पित

भूमिका

मनुष्य का स्वभाव है कि पहले वह किसी वस्तु को जानता है फिर उसकी इच्छा करता है और फिर उसे पाने के लिए कर्म करता है। कर्म का आधार इच्छा, और इच्छा का आधार ज्ञान है। ज्ञान मानों सरस्वती नदी है जो चित्त के अन्तःस्तल में बह रही है, इच्छा रूपी लहरों की गंगा और कर्म-प्रवाह की यमुनाका इससे मेल होता है। इस त्रिवेणी'रूप संगम पर जो प्रयाग का चैतन्य तीर्थ है, उसका नाम मनुष्य है। इस रहस्य को समझने पर ही भक्ति-काव्यका संदेश ठीक-ठीक समझ में आ सकता है! इस पर ध्यान देने से बोध अधूरा ही रह जायेगा।

भक्ति-काव्य की यह विशेषता है कि यह बातों-बातों ही में जीवन की कठिनाइयों को पार करने का सुगममार्ग सुचारु-रूप से दिखला देता है। यह ऐसा सर्व-साधारण मार्ग है कि पंडित जन और मूढ़ लोग सबके सब इस पथ पर कंधे से कंधा भिड़ाये चल सकते हैं। शास्त्रों के वाद-विवाद का यह मार्ग नहीं। यह मार्ग तो अपने आप ही चल पड़ने का है—अपने हृदय की भक्ति के प्रकाशमें! किसी मतमतान्तरसे यहां न कोई झगड़ाहै न टंटा भक्ति का मार्ग है, शास्त्र नहीं! दिलमें लगन हो, मुंह से उफ़ न निकले, आंखें खुली हों, पग आगेही आगे बढ़ते रहें—बस यही, भक्ति-मार्ग है, जिसकी व्याख्या संत-बाणियों में की गई है।

वैदिक काल से ऋषि-मुनि, भक्ति के सर्वसाधारण मार्ग का उपदेश लोगों को देते आये हैं। किन्तु काल के फेर से जब यह मार्ग लोगों की दृष्टि से ओझल हो गया और पथ-दर्शक के अभाव से हिन्दू-जनता अंधकार की महा निद्रा में सो गई तो सन्तों ने हिन्दी की मधुर बाणियों द्वारा लोगों को फिर जगाना आरम्भ किया कि वह तन्द्र, आलस्यको छोड़कर उठें, और भक्ति के सहजमार्ग पर चल कर अपने दुख-दरिद्र को दूर करें।

इनमें से कुछ संत-बाणियों का बालोपयोगी संग्रह यहां उपस्थित किया जाता है। यह बाणियां अनेक सन्तों के हृदय का अनुभव है। इन सबका तत्व एकही है। यह तत्वही मनुष्य-लोकके सुख का रहस्य है। इस रहस्य को समझने के उपरान्त यदि भक्ति-काव्य का रस पान किया जाए तो अधिक पुष्टि-कारक होगा। इस रहस्य ही में जीवनी शक्ति है। वह जीवन-रहस्य यह है:—

सब जानते हैं कि मनुष्य की यह स्वाभाविक चेष्टा है कि वह सब कठिनाइयों पर विजयप्राप्त करके शान्तिप्राप्त करें। पर उसका यह दुर्भाग्य है कि उसे शांतिकामार्ग सुझाई नहीं देता। यदि सुझाई भी देजाय तो लोकमें वह अपने आपको इतना विवश पाता है कि उस मार्ग पर चलने का उसे साहस नहीं होता और यदि चल भी पड़े तो वही चाल बेढ़गी! पापके दंडसे बचनेके लिए तो ईश्वरकी प्रार्थना करताहै किन्तु सिरे से हो पाप-बधन से मुक्त होनेके लिये ईश्वरका स्मरण नही किया जाता। इस दुर्बलताके कारण जीवन निस्तेज बना रहता है, उसे उच्चगति प्राप्त नहीं होती और भक्ति निष्फल रह जाती है। भक्ति की सार्थकता इसी में है कि मनुष्य पाप पर विजय प्राप्त करे और उसका मन पवित्र हो! जब तक मनुष्य माया के अधीन रहता है वह पापों को नहीं जीत सकता, जूंहिं मनुष्य ईश्वरसे नाता जोड़ लेता है उसे ईश्वर की सहायता से पूर्ण विजय और शान्ति प्राप्त होती है।

मनुष्य जब निश्चय-पूर्वक ईश्वर की शरण आता है तब ईश्वर उसका विजय-कार्य संम्पादन करताहै। मनुष्यनिश्चयधारण करता है, ईश्वर सहायता का काम आरम्भ करता है। पत्थर में आकार छेनी नही निकालती, कलाकार निकालता है, छेनी तो साधन मात्र है। मनुष्य भी यदि अपने आप को ईश्वर के हाथ में सौंप दे और निश्चय के साथ निमित्त-मात्र बन कर रह जाए

तो ईश्वर जो उसके सदा साथ है, उसे अवश्य अपने प्रसादगुण से उज्ज्वल रूप और उत्तम जीवन प्रदान करे। मनुष्य की ओर से ईश्वर पर निश्चय और ईश्वर की ओर से मनुष्य का कार्य निर्वाह—यह भक्ति की अद्‌भुत तराजू है, जिस पर जीवन का अनमोल रत्न सदा तुलता रहता है। साधु जीवन के ये ही दो लक्षण हैं—आत्म-त्याग और ईश्वर निश्चय। भक्तजन अपने जीवन के सब भार को ईश्वर के अर्पण करके उसके प्रसाद में निश्चय रखते हैं। जीवन का सबसे बड़ा भार हमारा अपना अहंकार ही है, इसलिए अहंकार-त्याग ही सर्व-त्याग है। आन्तरिक विकारों को अपनाने से मनुष्य पाप का आचरण करने लगता है। अहंभाव को विकारों से अलग करके, ईश्वर की शरण लेने में पाप के आघात से सहज ही में छुटकारा प्राप्त होता है।

ईश्वर कोई बाहर की वस्तु नहीं, वह सब जीवों का एक समान जीवन अन्तर्यामी भगवान है। अन्तर्यामी होने के कारण वह हम सबका संरक्षक है। हमारी रक्षा का भार उसी पर है। जिस प्रकार छोटा बच्चा अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता, पिता के आश्रित रहता है, पिता ही उसकी सब देख-भाल करता है उसी प्रकार भक्त-जन अपने आप को भुलाकर ईश्वर की शरण आते हैं, वह उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है। जिस तरह बच्चे को यह निश्चय है कि मेरा पिता मुझे प्यार करता है उसी तरह भक्तों को यह निश्चय होता है कि ईश्वर हम से प्रेम करता है। ईश्वर की आज्ञा का वह सहर्ष पालन करते हैं और अपना सारा जीवन उसी की सेवा में अर्पण कर देते हैं।

भक्त को केवल दो पग उठाने की आवश्यकता है और उस का बेड़ा पार है—पहला पग आत्म-त्याग और दूसरा ईश्वर निश्चय।

त्याग से हृदय पवित्र होता है मानों मनुष्य का दूसरा जन्म होता है अब वह सब आशा तृष्णा छोड़ कर इस भाव में संतुष्ट रहता है कि 'हर इच्छा' ! ईश्वर की इच्छानुसार चलने ही में वह अपना परम सौभाग्य समझता है। त्याग और निश्चय-भक्ति के रथ के दो पहिए हैं। यदि एक भी पहिया निकल गया तो रथ न चल सकेगा।

इस प्रकार विदित होगा कि भक्ति-मार्ग नव-जीव का मार्ग है भक्त ईश्वर का नव-जात शिशु है, वह ईश्वर पुत्र है। संसार में रहता हुआ भी वह संसारी पुरुष नहीं। ईश्वर के संकल्प के अनुकूल अपने संकल्प को सिद्ध करने का नाम ही भक्ति है। चित में एक मुहूर्त के लिए आवेश पैदा करना, चीखना चिलाना और करताल धम्माल बजाना, या ठाकुरद्वारे में बैठकर मूर्ति पर तिलक चन्दन लगाना—यह भक्ति का वास्तविक स्वरूप नहीं। भक्ति का सिंहासन मनुष्य के संकल्प में विराजमान है। भक्ति का संकल्प यह है—कामाय स्वाहा, हे प्रेमरूप भगवान, तुम्हारी कामना पूरी हो ! जो कुछ मेरा है वह मेरा नहीं। नेदं मम। मैं भी आप अपना नहीं, तुम हो सब जीवों की समृद्धि हो—समृद्धयै स्वाहा ! इस प्रकार भक्ति से मूर्धाभिषिक्त होकर मनुष्य ईश्वरीय साम्राज्य का भागी होता है। और वह सब प्रकार के दुखों और पापों पर विजय प्राप्त करके लोकहित के लिए सदा तत्पर रहता है।

भक्ति मार्ग कायरता का मार्ग नहीं, इस पर तो वह ही वीर पुरुष चल सकते हैं जिन्हों ने अपना सिर काट कर, उसे अपनी हथेली पर रखकर चलना सीखा हो। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि साधारण लोग या पापीजन इस मार्ग पर नहीं चल सकते। भक्ति मार्ग तो ऐसे ही लोगों के लिए विशेष रूप से उपकारी है। जिनका शरीर रोगी है उनको ही वैद्य की

आवश्यकता है नीरोगी को नहीं। योग सरल है। कुल यो-
औषधियां-त्याग और निश्चय ? त्याग से तात्पर्य अहंकार का
त्याग है और निश्चय का आशय है ईश्वर के अनुग्रह में अटल
विश्वास। कार्य सफल होने पर भी विश्वास और असफल होने
पर भी विश्वास ? असफलता में विश्वास डिगमगाना न चाहिए
आत्मविश्वास के मिट जाने से जो हृदय में दुर्बलता आ जाती
है और उससे जो निराशा उत्पन्न होती है वह सब पापों का
मूल है। धनादि प्रलोभन पाप का मूल कारण नहीं पाप का
मूल कारण है—निराशा व अश्रद्धा ! असफल होने पर भी ईश्वर
की पाप-मोचन शक्ति में आशा बनाये रखना, पाप बन्धन से
मुक्त होने का एक मात्र उपाय है।

भक्ति मार्ग के अनुसार ईश्वर की आज्ञा का पालन करना
ही परम स्वातंत्र्य है, इसी में मनुष्य और समाज के जीवन का
विकास है। इसी में व्यवसाय की शुद्धि है यही कर्तव्य-पालन
है। यही परमधर्म है।

सारांश यह कि मनुष्य कर्म से विचलित न हो। किन्तु उस
के सब कर्म सेवारूप हों। उनमें त्याग की भावना हो, "काम"
की वासना नहीं। भक्ति रूप जननी का, कर्म परिचारक हो,
और भक्ति का स्वरूप यह हो कि मनुष्य किसी क्षण भी ईश्वर
को न भूले और उसके साक्षी होने का सदा स्मरण करता
रहे—ओं ओं, (हां हां, ईश्वर है)। मन-वचन कर्म के साक्षी
परमात्मा का चित्त को बोध कराके, और परमात्मा की प्रसा-
दात्मक शक्ति में दृढ़ विश्वास करके, मनुष्य कर्म का संपादन
करे। इस प्रकार ज्ञान, इच्छा और कर्म का समन्वय प्राप्त होने
पर मनुष्य संसिद्धि को प्राप्त होता है और उसका अपना और
लोक का परम कल्याण होता है लोकमें दिव्य-जीवन की परमोप-
योगी चेतना को प्रकट करने का श्रेय ईश्वर-भक्तों ही को प्राप्त है।

भक्ति की इस सामान्य रूपरेखा में वह सब उपदेश समाये हुए हैं जो आगे लिखी सन्त बाणियों में आप स्वयं पढ़ेंगे। विद्यार्थियों को उचित है कि सब बुराइयों से बचने के लिए और अपना चरित्र शुद्ध और पवित्र रखने के लिए इन उपदेशों को समझें और समझकर पल्ले बांधें। भक्ति-काव्य का यही तात्पर्य है कि मनुष्य-जीवन पवित्र हो, इसमें स्फूर्ति और बल आए। मनुष्य मात्र की दुःख और मृत्यु पर विजय हो, और चित में शांति प्राप्त हो। नीचे लिखी प्रश्नोत्तरी माला के रूप में हमने इस काव्यार्थ को सुगम रूप से समझाने का यत्न किया है। आशा है, विद्यार्थिगण इसे विचारपूर्वक पढ़ेंगे और मनुष्य-जीवन को सफल बनाने में समर्थ होंगे। जीवन संग्राम है, और ईश्वर-भक्ति का संग्राम-कवच,इसे धारण करके कायर भी वीर बन सकता है। ईश्वर-भक्ति अपनी दिव्य शक्ति से कायरता को दूर कर वीरता का संचार करती है और अभयदान देती है। वीरता ही जीवन का परम सार है, और अभय परम स्वातन्त्र्य।

प्रश्नोत्तरमाला के पांच फूल

१. प्रश्न—मैं जानता हूं कि पापकर्म, विष का कुम्भ है पर इसके मुख पर ऐसा मधु लिप्त है कि मैं बरबस इसके रस का पान कर लेता हूं। इससे बचने का क्या उपाय है?

उत्तर—इसका सहज उपाय यह है कि तुम काम क्रोधादि को अपना आपा न समझो। इनको अपने से अलग मान-कर ईश्वर से अपना नाता पहचानो—"ईश्वर मेरा पिता है, मैं उसकी सन्तान हूं। काम क्रोधादि मेरे शत्रु हैं।" तत्काल ईश्वर के अस्तित्व का स्मरण करो और अपना

निश्चय पुकार-पुकार कर दृढ़ करो—ओं! ओं! सब शत्रु भाग जायेंगे—यदि ईश्वर-निश्चय दृढ़ है। अनात्मा के फंदे से छूटकर आत्मा, परमात्मा में, जो उसका सतस्वरूप है, सुरक्षित हो जायगा।

२. प्रश्न—मुझ पर विपत् पड़ती है, मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं पर मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं होती, ईश्वर सुनता ही नहीं! क्या ईश्वर है नहीं? है तो सुनता क्यों नहीं?

उत्तर—यह तुम्हारी भूल है और तुम्हारे निश्चय की दुर्बलता। पुत्र की बात पिता न माने तो क्या पिता है ही नहीं? पिता के हृदय में पुत्र का प्रेम है इसलिए वह जो कुछ भी करता है, प्रेमवश, पुत्र के लिए हितकारी है। इसी भावना से अपने निश्चय को ईश्वर में दृढ़ रखो। ईश्वर से पदार्थों को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करना निकृष्ट भाव है। उच्च भाव यह है—ईश्वर! तुम्हारी कामना सफल हो। परिग्रह, भक्ति का बाधक है, और आत्म त्याग पुष्टिकारक।

३. प्रश्न—ईश्वर की आज्ञाकारिता से क्या मेरी अपनी स्वातन्त्र्य हानि नहीं?

उत्तर—ईश्वर की आज्ञाकारिता ही परम स्वातन्त्र्य है। ईश्वर कोई पराया तो है ही नही जिसके आधीन होना दासता है। वह तो हमारा प्राणपति, प्राणों का प्राण है, हम सबके जीवन का आधार है। हमारा परम जीवन है और परम आत्मा है उसकी पुकार को सुनना अपना ही कहा मानना है। शरीर को अपना आपा मानना भूल है, यही पाप का मूल है।

४. प्रश्न—क्या ईश्वर से प्यार करने का यह आशय है कि हम अपने कुटुम्ब से प्रेम न करें?

उत्तर—नहीं, यदि यह आशय हो तो ईश्वर-प्रेम की कोई विलक्षणता नहीं। ईश्वर-प्रेम उस जगदाधार का प्रेम है, सब जगत जिसका रूप है, और जिसमें हम सब समाये हुए हैं। दोनोंका समन्वय इस प्रकार है कि ईश्वर में जगत और जगत में ईश्वर का हम दर्शन करें। पत्नी के लिए पति विष्णु-रूप हो और पति, पत्नी में लक्ष्मी का दर्शन करे। पिता, पुत्र में बाल-रूप भगवान का दर्शन करे, और पुत्र, पिता में जगत्पिता का रूप देखे। इस प्रकार सारा जीवन ईश्वरमय हो और सबका सबसे प्रेम ईश्वर भक्तिही का रूप हो। मूर्त प्रेम, अमूर्त का संकेत और साक्षी हो, और लोक-जीवन दिव्य-जीवन का प्रतिरूप !

५. प्रश्न—ईश्वर भक्ति और व्यवसाय यह दोनों साथ-साथ तो चल नहीं सकते भक्ति करें या काम-काज करें ?

उत्तर–दोनों साथ चल सकते हैं। सुनो, जो काम करो उसे ईश्वर के निमित्त करो, असामंजस्य दूर होगा। ईश्वर के निमित्त कोई बु ा काम तो किया ही नहीं जा सकता, भक्ति-भाव से तुम सब अच्छे काम करने लगोगे। भक्ति की भावना से तुम्हारे सब काम ईश्वर की सेवाका रूप धारण कर लेंगे। इसमें तुम्हारा अपना और पराया दोनों का कल्याण होगा। व्यवसाय में से स्वार्थ की मात्रा निकल जायेगी, और उसके स्थान में परार्थता आजाएगी, तब यह लोक सचमुच स्वर्ग लोक बन जायगा भारतवर्ष को इस समय ऐसे दिव्य जीवन की कितनी आवश्यकता है, इस बात पर विद्यार्थिगण स्वयं विचार करें।

लक्ष्मीधर
(मुख्याध्यापक हिन्दी तथा संस्कृत विभाग)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

२२-५-४६

सन्तों का संक्षिप्त परिचय

(पहला भाग)

१ रैदास—(सन १४३०-१५००) बनारस की चमार जाति से उत्पन्न, रामानन्द के शिष्य, मीराबाई के गुरु, कबीर के समकालीन।

२ मीराबाई—(१४७०-१५००) जोधपुर की राजकुमारी, उदयपुर, की रानी, रैदास की शिष्या।

३. कबीर—(१४४०-१५१८) ब्राह्मणी-पुत्र मुसलमान जुलाहे द्वारा पालित-पोषित-रामानन्द का शिष्य।

४. गुरु नानक—(१४६६-१५३६) लाहौर जिले के क्षत्रिय कुल में उत्पन्न।

५. सूरदास—(१४८३-१५६३) दिल्ली के समीप सीही ग्राम के ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न, बल्लभाचार्य के शिष्य, तुलसीदास के समकालीन।

६. दादू—(१५४४-१६०२) अहमदाबाद गुजरात के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न।

७. तुलसीदास–(१५३२-१६२३) यू० पी० जिला बांदा के ब्राह्मण, निवासस्थान बनारस, रामानन्द के शिष्य, नरहरिदास के गुरु।

८. मलूक—(१५७४-१६८२) प्रयाग जिले के क्षत्रिय। विट्ठलदास के शिष्य।

९ रसखान-(१५८३-१६२८) एक तुर्क मुसलमान, दिल्ली निवास स्थान, विट्ठलदास के शिष्य।

१० धरणी—(१६५६—?) छपरा जिले के एक कायस्थ।

११. यारी साहिब—(१६६८-१७२३) दिल्ली के एक मुसलमान सूफी कवि।

१२. जगजीवन साहब—(१७ वीं शताब्दी) बारांबंकी जिले के क्षत्रिय सतनामी सम्प्रदाय के संचालक।

१३. दूलमदास-(१७ वीं शताब्दी) का दूसरा आधा भाग) लखनऊ जिले के एक ठाकुर। जगजीवन साहब के शिष्य

१४. चरणदास-(१७०३-१७८१) राजपूताने के वैश्य कुल में उत्पन्न निवास स्थान—दिल्ली।

१५. सहजोबाई—(१७४३) चरणदासजी की बहन और शिष्या।

१६. बुल्लेशाह-(१७०३-१७५३) एक तुर्क मुसलमान। निवास स्थान लाहौर। निर्वाण। स्थान—कसूर, पंजाब

१७. गुलाल—(१८वीं शताब्दी) गाजीपुर के एक क्षत्रिय।

१८. भीखा साहब—(१८ वीं शताब्दी का दूसरा आधा भाग) आजमगढ़ जिले के चौबा कुल में उत्पन्न। गुलाल साहब के शिष्य।

१९. पलटू साहब—(१८ वीं शताब्दी) फैजाबाद जिले के वैश्य कुल में उत्पन्न। निर्वाण स्थान—अयोध्या।

२०. प्रतापनारायण मिश्र—(१८२६-१८४६) उन्नाव जिला, यू० पी० प्रदेश के।

२१. नाथूराम शंकर—(१८५८—) निवासस्थान, हरदुआगंज, जिला अलिगढ़।

(दूसरा भाग)

१. चन्द्रबरदाई-(११४८-११६१) उत्पत्तिस्थान—लाहौर, दिल्ली के पृथ्वीराज के राज कवि।

२. विद्यापति ठाकुर-(१४०६) मिथिला के ब्राह्मण।

३. केशव—(१५५८-१६१७)

४. रहीम—(१५८३-१६२८)पूरा नाम अब्दुलरहीम खानखाना। अकबर के दरबारी और सेनापति। श्रीकृष्ण के भक्त।

५. हरिदास—(१५८०)तानसेन और बैजूबावरे के गुरु।

३. सुन्दर-(१५६८)वैश्यकुल में उत्पन्न, दादू पन्थ के अनुयायी।

७. बिहारी—(१६०३-१६६३)

८. गरीबदास (१६१६-१६७८)जाटकुल में उत्पन्न,निवासस्थान जिला रोहतक।

९. लाल—(१६५७)

१० दरिया साहब बिहार वाले—(१६७४)आरा (बिहार) के क्षत्रिय संत।

११. वृन्द—(१६८८)

१२. रसनिधि—(१७०३) रियासत दतिया के।

१३. गिरधर कवि—(१७१३)

१४. तुलसी साहब-(१७६३-१८४३)दक्षिणी ब्राह्मण संत। पूना के राजा के पुत्र। निवासस्थान-हाथरस।

१५ गिरि—(१८३१)

१६ पंडित ब्रजनारायण चकबस्त–काशमीरी ब्राह्मण। निवास-स्थान-लखनऊ। कुछ वर्ष हुए परलोक सिधार गए।

(तीसरा भाग)

१. पेमी—(१६६०—१७२६) पूरा नाम–सैयद बरकतउल्लाह बिलग्रामी। निवासस्थान–मारहरा, जिला एटा, यू० पी०।

सूची-पत्र

प्रकाशक-गौरीशंकर शर्मा मैनेजर एस. चांद एण्ड क०, देहली।

मुद्रक—गोपीशंकर खन्ना, रामा कृष्णा प्रेस, कटरा नील, देहली

पहला भाग

प्रार्थना और भजन

१—हे जगदीश, मुझे पवित्र करो।

जय जगदीश हरे, जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, छिन में दूर करे ॥१॥
जो ध्यावे फल पावे, दुख बिनसे मन का।
सुख संपति गृह आवे, कष्ट मिटे तन का ॥२॥
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूं जिसकी ॥३॥
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम, सबके स्वामी ॥४॥
तुम कृपा करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता।
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता ॥५॥
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपती।
किस विधि मिलूं गुसाईं, तुमको मैं कुमती ॥६॥
दीनबन्धु दुखहरता, ठाकुर तुम मोरे।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ो तोरे ॥७॥
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा ॥८॥

२—हे प्रभो, तुम ही से मुझे आशा है।

शरणागतपाल कृपाल प्रभो, हमको इक आस तुम्हारी है।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ, नहिं दीनन के हितकारी है ॥१॥
सुधि लेत सदा सब जीवन की, अति ही करुणा उरधारी है।
प्रतिपाल करें बिन ही बदले, अस कौन पिता महतारी है ॥२॥
जब नाथ दया करि देखत हो, छुटि जात बिथा संसारी है।
बिसराय तुम्हें सुख चाहत जो, अस कौन नदान अनारी है॥३॥
परवाह तिन्हें नहिं स्वर्गहू की, जिनको तव कीरति प्यारी है।
धनि है धनि है सुखदायक जो, तव प्रेम सुधा अधिकारी है॥४॥
सब भांति समर्थ सहायक हो, तब आश्रित बुद्धि हमारी है।
सेवक, जग सगरो, तुम्हरे पद-पंकज पै बलिहारी है ॥५॥

(प्रतापनारायण मिश्र)

३—तुम ही मेरे जीवन का आधार हो।

पितु मातु सहायक स्वामि सखा, तुम ही इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं, तिनके तुम ही रखवारे हो ॥१॥
सब भांति सदा सुखदायक हो, दुखदुर्गुन नासक हारे हो।
प्रतिपाल करो सगरे जग को, अतिशय करुना उरधारे हो ॥२॥
उपकारन को कछु अन्त नहीं, छिन ही छिन जो विस्तारे हो।
भुलि हैं हम हीं तुमको तुमतो हमरी सुधि नाहिं विसारेहो ॥३॥
महाराज महामहिमा तुम्हरी, समुझे विरले बुधिवारे हो।
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे, मन-मन्दिर के उजियारे हो। ४॥
यहि जीवन के तुम जीवन हो, इन प्रानन के तुम प्यारे हो।
तुम सो प्रभु पाय प्रताप हरी, किहिके अब और सहारे हो ॥५॥

(प्रतापनारायण मिश्र)

४—भगवन् मैं तुम्हें कैसे प्रसन्न करूं ।

अजब हैरान हूं भगवन्, तुम्हें क्योंकर रिझाऊं मैं ।
कोई वस्तू नहीं ऐसी, जिसे सेवा में लाऊं मैं ॥१॥
करूं किस तरह आवाहन, कि तुम मौजूद हो हरजा ।
निरादर है बुलाने को, अगर घण्टी बजाऊं मैं ॥२॥
तुम्हीं हो मूरती में भी, तुम्हीं व्यापक हो फूलों में ।
भला भगवान को भगवान पर कैसे चढ़ाऊं मैं ॥३॥
लगाना भोग कुछ तुमको, यह इक अपमान करना है ।
खिलाता है जो सब जग को उसे कैसे खिलाऊं मैं ॥४॥
तुम्हारी ज्योति से रौशन हैं सूरज चांद और तारे ।
महा अन्धेर है तुमको अगर दीपक दिखाऊं मैं ॥५॥
भुजाएं हैं न सीना है न गर्दन है न पेशानी ।
कि हैं निर्लेप नारायण कहां चन्दन लगाऊं मैं ॥६॥

५—हे स्वामी, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूं ।

चरनकमल बन्दौं हरि राई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लघैं, अन्धे को सब कुछ दरसाई ॥१॥
बहिरो सुनै मूकि पुनि बोलै, रङ्क चलै सिर छत्र धराई ॥२॥
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तिहि पाई ॥३॥

(सूरदास)

६—पापियों का उद्धार करने वाले भगवान, मुझे पाप बन्धन से छुड़ाओ ।

अब मोहि डूबत क्यों न उबारो ।
दीनबन्धु दयानिधि स्वामी जन के दुःख निवारो ॥१॥
ममता घटा, मोह की बूंदें, सरिता लोभ, अपारो ।
डूबत, कितहूं थाह न पावत, तुम ही एक अधारो ॥२॥
तृष्णा-तड़ित चमके छिन ही छिन, हे प्रभु, मम तन जारो ।
घोर शब्द भवत्रास डरपावत, करत अति दुखियारो ॥३॥

यह भव-जल कलमल ही गहत है डूबत हूं मैं बिचारी।
सूर श्याम पतितन को संगी विरदहि नाथ सम्हारो ॥४॥
(सूरदास)

७—नाथ आप दीनों के हितकारी हैं।
दीनन-दुख-हरन देव सन्तन हितकारी ॥ध्रु०॥
अजामील गीध व्याध इनमें कहो कौन साध।
पंछी हू पद पठात गणिका सी तारी ॥१॥
ध्रुव के सिर छत्र देत प्रहलाद को उबार लेत।
भक्त हेत बांध्यो सेत लंका पुरि जारी ॥२॥
तंदुल देत रीझ जात, साग पात सो अघात।
गिनत नहिं जूठे फल खाटे मीठे खारी ॥३॥
गज को जब ग्राह ग्रस्यो दुःशासन चीर खस्यो।
सभा बीच कृष्ण कृष्ण द्रौपदी पुकारी ॥४॥
इतने हरि आय गये बचनना आरूढ़ भये।
सूरदास द्वारे ठाढ़ौ अन्धरो भिखारी ॥५॥
(सूरदास)

८—ईश्वर मनुष्य का प्रेम चाहता है, और प्रेम-वश मनुष्य की सेवा करता है।
सब से ऊंची प्रेम सगाई।
दुर्योधन को मेवा त्यागी साग विदुर घर पाई ॥१॥
जूठे फल शबरी के खाये बहु विधि प्रेम लगाई।
प्रेम के बस नृप सेवा कीन्ही आप बने हर नाई ॥२॥
राजसुयज्ञ युधिष्ठिर कीनो ता में जूठ उठाई।
प्रेम के वश अर्जुन रथ हांक्यो भूल गये ठकुराई ॥३॥
ऐसी प्रीत बढ़ी बृन्दाबन गोपिन नाच नचाई।
सूर क्रूर इस लायक़ नाहीं कह लग करौं बड़ाई ॥४॥
(सूरदास)

९—मेरे पापों को क्षमा करो, भगवान्।

हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ॥१॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलो हि नीर भरो।
जब दोनों मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम परो ॥२॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
गुन अवगुन पारस नहिं जाने कंचन करत खरो ॥३॥
यह माया भ्रमजाल कहावै सूरदास सिगरो।
अब की बेर प्रभु पार उतारो नहि प्रन जात टरो ॥४॥
(सूरदास)

१०—हे दीनदयालु, मेरी टेर सुनो, मैं पापों से दबा जा रहा हूं।

सोई अब कीजै दीन दयालु।
जाते मैं छिन चरण न छोड़ूं करुणासागर भक्तिरिसाल ॥१॥
इन्द्रिय अजित, बुद्धि विषयारत, मन की दिन दिन उलटी चाल।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निशदिन भरमत मैं बेहाल ॥२॥
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रत इनमें एकहु अंक न भाल।
कहा कहूं केहि भांति रिझाऊं तुमको हे किरपाल ॥३॥
सुनु समर्थ सर्वज्ञ कृपानिधि, अशरण-शरण, हरण-जगजाल।
कृपानिधान,सूर की यह गति, कासो कहै, कृपण, यह हाल॥४॥
(सूरदास)

११—ईश्वर, पतितों का साथ देता है।

अबिगत गत जानी न परे।
मन-बचन-अगम, अगाध, अगोचर,केहि विधि बुध संचरे॥१॥
अति प्रचण्ड पौरुष ते मातो केहरि भूख मरे।
तजि उद्यम, वृक्ष पर बैठो पंछी उदर भरे ॥२॥
कबहुँ तरणि डूबत पानी में कबहुँ सिला तरे।
बागर ते सागर कर राखे चहुँ दिशि नीर भरे ॥३॥

राजा रंक रंक ते राजा ले सिर छत्र धरे।
सूर पतित तर जाय छिनक में जो प्रभु टेक धरे ॥४॥

(सूरदास)

१२—कर्म की गति न्यारी है, मैं परमेश्वर के समीप रहना चाहता हूं।

ऊधो कर्मन की गति न्यारी।
सब नदियां जल भरि रहियां उदधि रह्यौ है खारी ॥१॥
उज्ज्वल पंख बगुला को दीने कोयर कीनी कारी।
सुन्दर नैन मृगी को दीने बन-बन फिरत बिचारी ॥२॥
मूरख-मूरख राजा कीने पण्डित फिरत भिखारी।
सूर श्याम से मिलने की आशा छिन-छिन बीतत भारी ॥३॥

(सूरदास)

१३—सुख दुख का सोच मत करो, ईश्वर पर विश्वास रखो।

सब दिन होत न एक समान।
इक दिन राजा हरिचन्द गृह संपति मेरु समान।
इक दिन जाय स्वपच गृह सेवत, अम्बर हरत मसान ॥१॥
इक दिन दूलह बनत बराती चहुं दिशि गढ़त निशान।
इक दिन डेरा होत जङ्गल में कर सूधे पग तान ॥२॥
इक दिन सीता रुदन करत है महा विषम उद्यान।
इक दिन रामचन्द्र मिलि दोऊ विचरत पुष्पविमान ॥३॥
इक दिन राजा राज युधिष्ठिर, अनुचर श्री भगवान।
इक दिन द्रोपदी नगन होत है चीर दुशासन तान ॥४॥
प्रगटत है पूरब की करनी, तजु मन सोच अजान।
सूरदास गुन कहं लग बरनौं, विधि के अंक प्रमान ॥५॥

(सूरदास)

१४—सुख दुख तो आते जाते रहते ही हैं, इन पर ध्यान न दो, ईश्वर में मन लगाओ।

ताते सेइये रघुराई।
संपति विपति, विपति से सम्पत, देह धरे की यही सुभाई ॥१॥
तरुवर फूले फूले परिहरे, अपने कालहि पाई।
सरवर नीर भरे पुनि उमड़े, सूखे खेय उड़ाई ॥२॥
द्वितिया चन्द बाढ़े ही बाढ़े, घटत घटत घट जाई।
सूरदास सम्पदा आपदा, जन कोऊ पतियाई ॥३॥
(सूरदास)

१५—भोग बिलास को त्याग कर ईश्वर भक्ति में मन लगाओ।

ऐ मन-मूरख जनम गंवायो!
करि अभिमान, विषयों से रांचो, हरि गुण तू नहिं गायो ॥१॥
यह संसार फूल सेमर को सुन्दर देख लुभायो।
चाखन लागो रुई उड़ानो, हाथ कछू नहिं आयो ॥२॥
कहा भया अब अवसर बीते पहिले नाहिं कमायो।
कहत सूर भगवत-भजन बिनु सिर धुनि धुनि पछितायो ॥३॥
(सूरदास)

१६—कुसंग मत करो।

छोड मन हरि-बिमुखन को संग।
कहा भयो पय पान कराये विष नहिं तजत भुजंग ॥१॥
जाके संग कुबुधि उपजत है परत भजन में भंग।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निस दिन रहत उमंग ॥२॥
कागहि कहा कपूर खवाये स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अंग ॥३॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि बढ़त न दूजो रंग ॥४॥
(सूरदास)

१७—प्रीति में दुख है पर इस दुख में आनन्द है।

प्रीति कर काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्रान दह्यो ॥१॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, संपति हाथ गह्यो।
सारंग प्रीति करी जो नाद सों सन्मुख बान सह्यो ॥२॥
हम जो प्रीति करी माधौ सों चलत न कछू कह्यो।
सूरदास प्रभु बिनु दुख दूनो नैनन नीर बह्यो ॥३॥

(सूरदास)

१८—हे स्वामी, मुझे शक्ति दो कि मैं तुम्हें सदा भजता रहूं। जीवन के सब सम्बन्धों में तुम्हारी ही प्रतीति हो।

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस विश्वास भरोसो हरु जिय की जड़ताई ॥१॥
चहौं न सुगति सुमति सम्पति कछु रिधि सिधि विपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग राम पद बढ़ो अनुदिन अधिकाई ॥२॥
कुटिल कर्म लै मोहि जाई जहं तहं अपनी बरि आई।
तहं तहं जनि छिन छोह छांड़िये कमठ अंड की नाई ॥३॥
यह जग मे जहं लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसीदास प्रभु ही सों होहिं सिमिट एक ठाई ॥४॥

(तुलसीदास)

१९—राम पापियों के हितकारी हैं, पतितों के साथी हैं।

ऐसे राम दीन-हितकारी।
अति कोमल, करुनानिधान, बिनु कारन उपकारी ॥१॥
साधनहीन, दीन, निज, अघबस सिला भई मुनि नारी।
गृह ते गवन, परसि पदपावन, घोर साप ते तारी ॥२॥
हिंसारत निषाद तामस वपु, पसु समान बनचारी।
भेंट्यो, हृदय लगाइ, प्रेमबस नहिं कुल जाति विचारी ॥३॥

यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत, कहि न जाय अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गये भय टारी ॥४॥
विहंगयोनि आमिष अहार-पर, गीध कौन व्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निजकर सब भांति संभारी ॥५॥
अधम जाति सबरी जोषित, जड़, लोक वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति, दै दरस, कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उबारी ॥६॥
कपि सुग्रीव बन्धु भये व्याकुल आयौ सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के, हत्यो बालि, सहिगारी ॥७॥
रिपु को अनुज विभीषन निसिचर, कौन भजन अधिकारी।
सरन गये, आगे ह्वै लीन्हो, भेट्यो भुजा पसारी ॥८॥
अशुभ होय जिनके सुमिरे ते वानर रीछ विकारी।
वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी ॥९॥
कहं लग कहौं, दीन अगिनित, जिनकी तुम विपति निबारी।
कलिमल ग्रसित, दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी ॥१०॥

(तुलसीदास)

२०—ईश्वर में विश्वास करने से दुख और मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है।

ऐसो श्रीरघुबीर भरोसो।
बारि न बोर सकहिं प्रहलादहि, पावक नाहिं जरो सो ॥१॥
हरणाकुश बहु भांति सतायो हठकर बैर करो सो।
मारयो चाहै दास नर-हरि को आपै दुष्ट मरो सो ॥२॥
मीरा के मारन के कारन पठ्या जहर खरो सो।
राम नाम अमृत भयो ताको हंसि हंसि पान करो सो ॥३॥
द्रुपदसुता के चीर उतारन राजसमाज गयो सो।
ऐंचत खेंचत भुजबल हारे नेक न अंग उघरो सो ॥४॥
जारयो लंक अंजनिनन्दन देखत पुर सगरो सो।
ताके मध्य विभीषण को गृह रामकृपा उबरो सो ॥५॥

तुलसीदास विश्वास राम को नर नारि करो सो।
और प्रभाव कहं लग बरणौं जो जमराज डरो सो ॥६॥

(तुलसीदास)

२१—भगवान भक्तों का दुख दूर करने वाले, अपने भक्तों के बस हैं।

नाथ कैसे गज के फन्द छुड़ाए ॥
गज और ग्राह लड़ें जल भीतर दारुण द्वन्द्व मचाए।
गज की टेर सुनो रघुनन्दन गरुड़ ले भजि आए ॥१॥
भिलिनी को बेर, सुदामा के तन्दुल, रुचि रुचि भोग लगाए।
दुर्योधन को मेवा त्यागो, साग विदुर घर पाए ॥२॥
इन्द्र ने कोप कियो ब्रज ऊपर छिन में वारि बहाए।
गोवर्द्धन, स्वामी नख पर लीन्हीं इन्द्र को मान घटाए ॥३॥
अर्जुन के स्वारथ रथ को हांक्यों, महाभारत में गाए।
भारत में भंवरी को अंडा घंटा तोरि बचाए ॥४॥
ले प्रहलाद खम्भ से बांधो राजन त्रास दिखाए।
जन अपने की प्रतिज्ञा राखी नरसिंह रूप बनाए ॥५॥
जहं तहं भीर परी संतन पर तहं तहं होत सहाए।
तुलसीदास सेवक रघुनन्दन मंगल गाए ॥६॥

(तुलसीदास)

२२—भोगविलास को छोड़ो। आत्मा का कल्याण करो, नहीं तो पछताओगे।

मन पछितैहै अवसर बीते।

दुर्लभ देह पाइ, हरिपद भजु, करम बचन और ही ते ॥१॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम संवारे, अन्त चले उठि रीते ॥२॥
सुत वनितादि जान स्वारथरत, न करु नेह सब ही ते।
अन्तहुँ तोहि तजैगे पामर तू न तजै अब ही ते ॥३॥

अब नाथहि अनुरागु जागु, जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ बिषय बहु घी ते ॥४॥
(तुलसीदास)

२४—भक्ति और सदाचार!

कबहु' मैं यह रहनि रहूंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते सन्त सुभाव गहूंगो ॥१॥
यथा-लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न कहूंगो।
पर-हित निरत निरन्तर,मन-क्रम;वचन नियम निबहूंगो ॥२॥
पुरुष बचन अति दुसह श्रवण सुनि तेहि पावक न दहूंगो।
विगतमान, सम, शीतल मन, पर गुण नहिं दोष गहूंगो ॥३॥
परिहर दुखजनित चिंता दुख सुख समबुद्धि रहूंगो।
तुलसीदास यह पथ रहके, अविचल भक्ति गहू'गो ॥४॥
(तुलसीदास)

२४—राम के नाते सब नाती हैं।

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छांड़िये कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥१॥
तज्या पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कन्त व्रज-बनितनि भे सब मंगलकारी ॥२॥
नाते नेह राम के मानियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहा आंखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहां लौं ॥३॥
तुलसी, सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होइ सनेह रामपद एतो मतो हमारो ॥४॥
(तुलसीदास)

२५—अन्तर्यामी भगवान ही पाप से बचाने वाले है।

दयाकरो प्रभु अन्तर्यामी। महा मलिन मैं कपटी कामी ॥१॥
मानुष जन्म दिया उत्तम। और कियो सुख संपतिधामी ॥२॥
तदपि त्यागि तेरो नाम दयामय। रह्यौं सदा विषयन अनुगामी ॥३॥

पापतापसो भयोअति पीड़ित। अब मेरी पीर थमतनहिंथामी॥४॥
हुए हतास निरास जगत से। आयो शरण तिहारी स्वामी॥५॥

(कबीर)

२६—हे पिता मेरे पापों को क्षमा करो, मुझे अपनी भक्ति का दान दो।

बिनवत हौं करि जोरिकै सुनिले कृपानिधान।
साधु-संगति सुख दीज्य, दया गरीबी दान॥१॥
सुरति करौ मेरे साइयां, हम हैं भजवल माहिं।
आपे ही बहि जायंगे, जो नहिं पकरहु बाहिं॥२॥
का मुख लै बिनती करूं, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत अवगुन करूं कैसे भावौं तोहि॥३॥
मैं अपराधी जनम का, नखसिख भरा विकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करौं सम्हार॥४॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकसु गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज॥५॥
औगुन किये जो बहु किये, करत न मानो हार।
भावै बन्दा बक सये, भावै गरदन मार॥६॥
अन्तर्यामी एक तुम, आतम एक अपार।
जो तुम छांड़ौ हाथ तै, कौन उतारे पार॥७॥
साहिब तुमहि दयालु हो, तुम लग मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर॥८॥
तुम तो समरथ साइयां, दृढ़ कर पकड़ो बांहि।
धुर ही तै पहुंचाइये, जनि छांड़ौ मग मांहि॥९॥
भक्तिदान मोंहि दीजिए, गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिए, निस दिन तुम्हारी सेव॥१०॥

(कबीर)

२७—अपना मन ईश्वर में लगाओ, वह मिल जायगा।

पी ले प्याला हो मतवाला प्याला प्रेम हरी-रस का रे।
बालापन हंसि खेल गंवाया तरुण भया नारी बस का रे।
वृद्ध भया कफ वायु ने घेरा तन से जाय नहीं खटका रे। ॥१॥
नहिं सतसंग न कथा कीरतन नहीं प्रभु-चरणन प्रेम-रचा रे।
अबहूं सोच समझ अज्ञानी इस जगमें नहिं कोई अपना रे॥२॥
काम क्रोध मद लोभ ईर्ष्या इनमें निशदिन रहत फंसा रे।
भोग विलास वासना जग की गल बिच जमका फन्द पड़ा रे॥३॥

(कबीर)

२८—ईश्वर प्रेम का प्याला पियो और प्रसन्न रहो।

मन के लगावे से हर पावे, जोगी या विधि मन को लगावे॥
जैसे पतंग जरे दीपक में प्रीति से प्रान जलावे।
जगमग ज्योति सही नहि जाये जोति में आन समावे॥१॥
जैसे नारि पनघट को जाति सिर गागर भर लावे।
सखियन संग बोलत चालत सुरत गागर से लगावे॥२॥

(कबीर)

२९—परदा पड़ा है इसे हटाओ, दर्शन होंगे।

घूंघट का पट खोल रे तो को पीय मिलेंगे॥
घट घट में वो ही साईं रमता, कटुक-बचन मत बोल रे॥१॥
धन जोबन का गरब न कीजे, झूठा पचरंग चोल रे॥२॥
सुन्न-महल में दियरा बारि ले, आसा से मत डोल रे॥३॥
जोग-जुगत से रंग-महल में पिय पाये अनमोल रे॥४॥
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥५॥

(कबीर)

३०—मौत सिर पर मंडला रही है, पुण्य करो।

सुकृतहु कर ले राम सुमरि ले, का जाने कल की ॥
झूठ कपट कर माया जोड़ी बात करे छल की।
पाप की पोट धरी सिर ऊपर किस विधि होय हल्की ॥१॥
काया भीतर हंसा बोले करनी कर कल की।
जब ये हंस निकरि जायेगा मिट्टी जंगल की ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ निवारो छाड़ो छलबल की।
ज्ञान वैराग दया मन राखो कहै कबीर असल की ॥३॥

(कबीर)

३१—मनुष्य-शरीर देवता का मन्दिर है, इसे अपवित्र न होने दो।

झीनी झीनी बीनी चदरिया ॥ध्रु०॥
काहे कै ताना, काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया ॥१॥
आठ-कंवल-दल चरखा डोले, पांच तत्व गुन-तीनि चदरिया।
साइं को सियत मास दस लागै, ठोंक ठोंक के बीनि चदरिया॥२॥
सो चादर सुरनर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीनि चदरिया।
दास कबीर जतन सों ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनि चदरिया॥३॥

(कबीर)

३२—विधाता की सृष्टि में दुःख अनिवार्य है इसे सहन करो।

करम-गति टारे नाहिं टरी।
मुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता हरन, मरन दशरथ को, बन में बिपति परी ॥१॥
कहं वह फन्द कहां वह पारधी कहं वह मिरग चरी।
सिया को हरि लैगो रावन, सुवरन लंक जरी ॥२॥
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी।
कोट गाय नित पुन्न करत नृप गिरगट जोनि परी ॥३॥

पांडव जिनके आप सारथी तिन पर विपति परी ।
दुर्योधन को गरब घटाओ, जदुकुल नास करी ॥४॥
राहु केतु और भानु चन्द्रमा विधि संजोग परी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही ॥५॥

(कबीर)

३४—पाखंड छोड़ो, ज्ञान प्राप्त करो, समता-दृष्टि रखो ।

ब्राह्मण ह्वै के ब्रह्म न जानै । घर में यज्ञ प्रतिग्रह आनै ॥१॥
जे सिरजा तेहि नहि पहिचानै । कर्म भर्म लै बैठि बखानै ॥२॥
ऊंच नीच कहु काहि जुहारा । डूबि गये नहि आपु संभारा ॥३॥
ऊंच नीच है मध्यम बानी । एकै पवन एक है पानी ॥४॥
एकै मटिया एक कुम्हारा । एक सबन का सिरजन हारा ॥५॥
एक चाक बहु चित्र बनाया । नाद बिन्दु के बीच समाया ॥६॥
व्यापो एक सकल का ज्योति । नाम धरे क्या कहिये मोती ॥७॥
हंस देह तज न्यारा होई ताकी । जाति कहै धौं कोई ॥८॥
हिन्दू, तुरक, कि बूढ़ा बारा, । नारि, पुरुष, मिलिकरी बिचारा॥९॥
कहिये काहि कहा नहि माना । दास कबीर सोई पहिचाना ॥१०॥

(कबीर)

३५—जगदीश एक ही है, नामरूप का भेद है ।

भाई रे, दुइ जगदीश कहां ते आये कहु कौन भरमाया ।
अल्ला, राम, करीम, केशव, हरि, हजरत नाम धराया ॥१॥
गहना एक कनक ते गहना, तामें भाव न दूजा ।
कहन सुनन कों दुइ कर थापे, इक निमाज़ इक पूजा ॥२॥
वोही महादेव, वोही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये ।
कोई हिन्दू कोई तुरुक कहावै एक जमीं पर रहिये ॥३॥
वेद किताब पढ़ें वे खुतवा, वे मौलाना वे पाँडे ।
विगत विगत के नाम धरायो इक माटी के भांडे ॥४॥

कहै कबीर, वे दोनों भूले, रामहिं किनहुं न पाया।
वे खसिया वे गाय कटावें वादै जनम गंवाया ॥५॥

(कबीर)

३६—साधुओं के लक्षण।

साधु बड़ परमारथी, घन ज्यों बरसें आय।
तपन बझावे और की, अपनी पारस लाय ॥१॥
दुख सुख, एक समान है, हरष शोक नहिं व्याप।
उपकारी निष्कामता, उपजै छोड़ न ताप ॥२॥
सदा रहे सन्तोष में, धरम आप दृढ़ धार।
आस एक गुरुदेव की, और न चित्त विचार ॥३॥
सावधान औ शीलता, सदा प्रफुल्लित गात।
निरविकार गम्भीर मति, धीरज दया बसात ॥४॥
निरवैरी सब जीव तैं, स्वामी से ती नेह।
विषयों से न्यारा रहैं, साधुन का मत येह ॥५॥
मौन अपमान न चित धरे, औरन को सनमान।
जो कोई आशा करे, उपदेशे तेहि ज्ञान ॥६॥
शीलवन्त दृढ़ ज्ञान मत, अति उदार चित्त होय।
लज्जावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥७॥
दयावन्त धरमक ध्वजा, धीरजवान पुमान।
सन्तोषी सुखदायक रु, सेवक परम सुजान ॥८॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥९॥
निश्चय-भल और दृढ़मता, ये सब लच्छन जान।
साधु सोई है जगत में, जो यह लच्छनवान ॥१०॥
ऐसा साधू खोजिये, रहिये चरनों लाग।
मिटे जनम की कलपना, जागे पूरन भाग ॥११॥

(कबीर)

३७—बन में क्यों जाते हो, ईश्वर तुम्हारे अन्दर ही विद्यमान है।

केहि रे बन खोजन जाई।
सर्व-निवासी, सदा अलेपा, तोही संग समाई ॥१॥
पुहुप मध्य जिमि वास बसत है, मुकुर माह जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर, घर ही खोजहू जाई ॥२॥
बाहर भीतर एकहु जानहु, यह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक, बिन आपै चीन्हे, मिटे न भ्रम की काई ॥३॥

(नानक)

३८—भजन बिना मनुष्य-जीवन व्यर्थ है।

तू सुमिरन करले मेरे मना, तेरी बीती जात हरि नाम बिना।
देह नैन बिन, रैन चन्द बिन, नारी पुरुष बिना।
जैसे पंडित वेद-विहीना, वैसे मन हरि नाम बिना ॥१॥
कूप नीर बिनु धेनु क्षीर बिनु, मन्दिर दीप बिना।
जैसे तरुवर फूल विहीना, तैसे मन हरि नाम बिना ॥२॥
काम क्रोध, मद लोभ निवारो, माया छोड़ो सन्त जना।
नानक कहै सुमरो भगवन्ता, या जग में नहि कोई अपना ॥३॥

(नानक)

३९—भेद-भाव छोड़कर समदृष्टि प्राप्त करो।

साधो मन का मान त्यागो।
काम क्रोध संगत दुर्जन की, ताते अहनिस भागो (ध्रु०)
दुख-सुख दोनों समकर जाना, और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता, तिन जग, तत्व पिछाना ॥१॥
अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागे, खोजै पद निरवाना।
जन नामक यह खेल कठिन है, किनहु गुरु-मुख जाना ॥२॥

(नानक)

४०—भक्त के लक्षण

जो नर दुख में दुख नहिं माने,
सुख-स्नेह और भय नहिं जाके,
कंचन माटी जाने ॥१॥
नहिं निन्दा नहि अस्तुति जाके,
लोभ मोह अभिमाना,
हर्ष शोक ते रहै नियारो,
नाहिं मान अभिमाना ॥२॥
आसा मनसा सकल त्यागि कै,
जग ते रहै निरासा,
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन,
तेहि घट ब्रह्म निवासा ॥३॥
गुरु-किरपा जेहि नर पै कीन्ही,
तिन यह जुगति पिछानी,
नानक लीन भयो गोविंद सो,
ज्यों पानी संग पानी ॥४॥

४१—अज्ञानवश मैं ईश्वर से प्रेम नहीं कर सका। साक्षी-रूप भगवान मुझे जानते हैं और मुझसे प्रेम करते हैं। उनकी करुणा ही से मेरा निस्तारा होगा।

नर-हरि चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करौं मैं तेरी ॥टेक
तू मोहिं देखै, हौं तोहि देखूं, प्रीति परस्पर होई।
तू मोहि देखै, तोहि न देखूं, यह मन सब बुधि खोई ॥१॥
सब घट अन्तर रमसि निरन्तर, मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर, मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना ॥२॥
मैं तै तोरी मोरि, असमझिसों, कैसे करे निस्तारा।
कह रैदास कृष्ण करुणामय, जय जय जगत-अधारा ॥३॥
(रैदास)

४२—मेरा प्रेम ईश्वर से है।

सांची प्रीति,हम तुम संग जोड़ी;तुम संग जोड़ी अवर संग तोड़ी ॥१॥
जो तुम बादर, तो हम मोरा; जो तुम चन्दा, हम भये चकोरा ॥२॥
जो तुम दीवा, तो हम बाती; जो तुम तीरथ तो हम जाती ॥३॥
जहं जाऊं तहं तुम्हरी सेवा; तुम सा ठाकुर और न देवा ॥४॥
तुम्हरे भजन कटे भव फांसा, भक्ति-हेतु गावै रैदासा ॥५॥

(रैदास)

४३—प्रेमवश मैं प्रभु का दास हूं।

अब कैसे छूटै नाम रट लागी।
प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी, जाकी अंग अंग बास समानी ॥१॥
प्रभुजी तुम बन, हम मोरा, जैसे चितवन चन्द चकोरा ॥२॥
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती ॥३॥
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहि मिलत सुहागा ॥४॥
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥५॥

(रैदास)

४४—सब नाशवान है; ईश्वर अविनाशी है, वो ही मौत की फांसो से छुड़ाने वाला है।

भज मन चरण-कमल अविनासी।
जे ताइ दीसे धरति गगन बिच, ते ताइ सब उठ जासा।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें, कहा लिये करवट कासी ॥१॥
इस देही का गरव न करना माटी में मिल जासी।
यों संसार चहर की बाजी, सांझ पड़्यां उठि जासी ॥२॥
कहा भयो है भगवा पहर्यां, घर तज, भये सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जानी, उलटि जनम फिर आसी ॥३॥
अरज करौं अबला कर जोरे, श्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, काटो जम की फांसी ॥४॥

(मीराबाई)

४५—रे मन, ईश्वर–भजन कर, ईश्वर ही रक्षा करने वाला है ।

भज ले रे मन गोपाल-गुना ॥
अधम तरे अधिकार भजन सू, जोइ आये हरि की सरना ।
अविश्वास तो साखी बताऊं, अजामेल, गनिका, सदना ॥१॥
जो कृपालु तन मन धन दीन्हों, नैन नासिका मुख रसना ।
जाको रचत मास दस लागे, ताहि न सुमिरो एक दिना ॥२॥
बालापन सब खेल गवांयो, तरुन भयो जब रूप घना ।
बृद्धभयो तब आलस उपजो, माया मोह भयो मगना ॥३॥
राज और गीध हू तरे भजन सू, कोउ तरयो नहिं भजन बिना ।
धना, भगत, पीपा, पुनि सेवरी, मीरा की हू करो गनना ॥४॥
(मीराबाई)

४६—सिवाये ईश्वर के मुझे कोई प्यारा नहीं ।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।
तात, मात. भ्रात, बन्धु, आपनो न कोई ॥१॥
अंसुवन जल सींच-सींच प्रेम बेल बोई ।
अब तो बेल फैल गई आनन्द फल होई ॥२॥
सन्तन ढिग बैठ बैठ लोक-लाज खोई ।
छाड दई कुल की रीति क्या करिहै कोई ॥३॥
आई मैं भगति-काज, जगत देखि मोही ।
दासि मीरा, गिरधर प्रभु, तारो अब मोही ॥४॥
(मीराबाई)

४७—मेरा प्रियतम अविनाशी है, मेरे हृदय में उसका सदा निवास है । मैं इस अनुभव में सदा रत हूं ।

मैं तोरे रङ्गराची, सांवरे मैं तोरे रङ्ग राची
चन्दा जायगा सूरज जायगा, जायगी धरनी आकासी ।
पवन पानी दोनों ही जायेंगे, अटल रहे अविनासी ॥१॥

जिनके पिया परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजत पाती।
मेरे पिया मेरे घट में बसत है, ना कहिं आति न जाती ।।२।।
नेह का तेल प्राण का दिवरा, और सुरत की बाती।
अनुभव-ज्योति एक रस ठाड़ी, ऐसि जगे दिन राती ।।३।।
संग की सखियां मधुरा पी पी, होय रहीं मधुमाती।
मैं मधु पीयो प्रेम-भटी का, मस्त रहूं दिन राती ।।४।।

(मीराबाई)

४८—पिता, मैं पापी हूं, मुझे दंड दो या बचाओ, पर सदा अपने पास रखो।

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर।
पलपल का मैं गुनहा तेरा, बकसहु अवगुन मोर ।।१।।
बेमरजादा, मिति नहीं, ऐसे किए अपार।
मैं अपराधी बाप जी, मेरे तुम ही अधार ।।२।।
आदि अन्त लौं आय करि, सुकृत कछू ना कीन्ह।
माया मोह मद मछरा, स्वादु सबे चित दीन्ह ।।३।।
साईं सांचा नांव दे, काल झाल मिटि जाइ।
दादू निर्भय ह्वै रहै, कबहूं काल न खाइ ।।४।।
राखनहारा एक तू, मारनहार अनेक।
दादू के दूजा नहीं, तू आपै ही देख ।।५।।
जह तह विषै विकार तें, तुम ही राखनहार।
तन मन तुम को सौंपिया, सांचा सिरजनहार ।।६।।
मुझ भावै सो मैं किया, तुझ भावै सो नाहिं।
दादू गुनहगार है, मैं देख्या मन माहिं ।।७।।
तुम्हको भावै और कछु, हमको है कछु और।
मिहिर करौ तो छूटिये, नहिं तो नाहिं ठौर ।।८।।
खुशी तुम्हारी त्यौं करा, हम तो मानी हार।
भावै बन्दा बकसिये, भावै गहि करि मार ।।९।। (दादू)

४९—भाई, ईश्वर तक पहुंचने का मेरा यह मार्ग है।

भाई ऐसा पन्थ हमारा।
द्वै पक्ष रहित पन्थ, गहि पूरा, अवर्ण एक अधारा ॥१॥
बाद विवाद काहू सों नाहिं माहीं जगत थैं न्यारा।
समदृष्टि सुभाव सहज मैं आपहि आप विचारा ॥२॥
मैं तै मेरी, यहु मति नाहीं, निरबैरी निरकारा।
पूरण सबै देखि आपा पर, निरालंब निरधारा ॥३॥
काहू के संग मोह न ममता, संगी सिरजनहारा।
मन ही मनसूं समझि सयानो, आनन्द एक अपारा ॥४॥
काम कल्पना कदै न कीजै, पूरण ब्रह्म पियारा।
रहि पन्थ, पहुंचि पार, गहि दादू सो तत सहज संभारा ॥५॥
(दादू)

५०—मेरा सब कुछ ईश्वर ही है।

तू ही तू गुरुदेव हमारा, सब कुछ मेरे नाम तुम्हारा।
तुम्हीं पूजा तुम्हीं सेवा, तुम्हीं मेरे देवा ॥१॥
जोग जग्य तू साधन जापा, तुम्हीं मेरे आपै आपा ॥२॥
तप तीरथ तू बरत सनाना तुम्हीं ज्ञाना, तुम्हीं ध्याना ॥३॥
वेद भेद तू पाठ पुराना, दादू के तुम पिंड पुराना ॥४॥
(दादू)

५१—ईश्वर को पाये बिना, मैं क्यों जिवित हूं !

अजहूं न निकसै प्राण कठौर ॥
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ॥१॥
चारि पहर चारों जुग बीते, रैनि गवांई भोर ॥२॥
अवधि गई अजहूं नहिं आये, कितहूं रहे चित-चोर ॥३॥
कबहूं नैन निरखि नहिं देखे, मारग चितवन चोर ॥४॥
दादू ऐसे आतुर विरहिण, जैसे चन्द चकोर ॥५॥ (दादू)

५३—सावधान ! समय बीत रहा है, सुकृत करो ।

साथी सावधान ह्वै रहिये ।
पलक माहि परमेसुर जाने, कहा होत कहा कहिये ॥१॥
बाट घाट कछु समझ न आवे, दूर गनन हम जाना ।
परदेसी, पथ चलै अकेला, औघट घाट पयाना ॥२॥
संग न साथी, कोई नहीं तेरा, वह सब हाट पसारा ।
तरवर पत्ती सबै सिधाए, तेरा कोण गंवाना ॥३॥
सबै बटाऊ पंथ सिधाए. स्थिर नाहीं कोहि ।
अन्तकाल कौ आगे पीछे, बिछुरत बार न होहि ॥४॥
काची काया कोण भरोसा, रैनि गई का सोवै ।
दादू संभल सुकृत लीजै सावधान किन होवै ॥५॥

(दादू)

५३—ईश्वर अब प्रगट हो जाओ, अब विलम्ब न करो ।

निरंजन क्यूं रहै मौन, गहै वैराग,
केते जुग गये ॥टेक॥१॥
जागै जगपतिराय, हंसि बोले नहीं ।
परगट घूंघट मांहि, पट खोलै नहीं ॥२॥
सदिकै करूं संसार, सब जग वारणैं ।
छाडूं सब परिवार, तेरे कारणैं ॥३॥
वारूं पिंड प्राण, पाऊ सिर धरूं ।
ज्यूं ज्यूं भावै राम, सो सेवा करूं ॥४॥
दीनानाथ दयाल, विलम्ब न कीजिये ।
दादू बलि बलि जाइ, सेज सुख दीजिये ॥५॥

(दादू)

२४—ईश्वर की दया ही से ईश्वर की प्राप्ति होती है।

हमथै दूर रही गति तेरी।
तुम हो तैसी तुम ही जानौं, कहा बपुरी मति मेरी ॥१॥
मन थे अगम, दृष्टि अगोचर, मनसा का गम नाहीं।
सुरति समाय, बुद्धि-बल थाकै, बचन न पहुंचे ताहीं ॥२॥
जोग न ध्यान ज्ञान गम नाहीं, समझि• समझि सब हारे।
उनमनी रहत प्राण घट साधे पार न गहत तुम्हारे ॥३॥
खोज परे गति जाय न जाणी, अबहै गहन कैसे आवै।
दादू अविगति देव दया करि, भाग बड़ें सो पावै ॥४॥

(दादू)

२५—ईश्वर के ज्ञान से सिद्धि प्राप्ति होती है।

भाई रे ऐसा एक बिचारा, यों हरि गुरु कहै हमारा।
जागत सूते सोवत सूते, जब लग राम न जाना।
जागत जागे सोवत जागे, जब राम नाम मन माना ॥१॥
देखत अंधे अंध भी अंधे, जब लग सत्त न सूझै।
देखत देखै अंध भी देखै, जब राम सनेही बूझै ॥२॥
बोलत गूंगे गूंगे भी गूंग, जब लग तत्व न चीन्हा।
बोलत बोले गूंगे भी बोले जब राम नाम कह दीन्हा ॥३॥
जीवत मूए मूए भी मूए, जब लगि नहीं प्रकासा।
जीवत जीए मुए भी जीए, दादू राम निवासा ॥४॥

(दादू)

२६—मन की पवित्रता से ईश्वर मिलता है।

आपा मेटि न हरि भजे तेइ नर डूबे।
हरि का मर्म न पाइया, कारन कर ऊबे ॥१॥
करें भरोसा पुत्र का, साहिब बिसराया।
डूब गये तर बोर को, कहूं खोज न पाया ॥२॥

साधु मंडली बैठि के, मूढ़, जाति बखानी ।
हम बड़ि हम बड़ि करि मूए, डूबे बिन पानी ।।३।।
काम क्रोध सब त्यागि के, जो रामै गावै ।
दास मलूका यूं कहैं, तेहिं अलख लगावै ।।१।।

(मलूक)

२७—ईश्वर को कैसे गुण वाला मनुष्य प्यारा है !

ना वह रीझै जपतप कीन्हें, ना आतम के जारे ।
ना वह रीझै धोती नेती, ना काया के पखारे ।।१।।
दाया करे, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी ।
अपना सा दुख सबका जानै, वाहि मिलै अविनासी ।।२।।
सहै कुशब्द, बाद हूँ त्यागै, छांड़े गरब गुमाना ।
यही रीझ मेरे निरङ्कार की, कहै मलूक दिवाना ।।३।।

(मलूक)

२८—धर्मशील बनो और ईश्वर-भजन करो ।

नाम जपन क्यों छोड़ दिया !
क्रोध न छोड़ा झूठ न छोड़ा, सत्य बचन क्यों छोड़ दिया ।।१।।
झूठे जग में जी ललचाकर, असल बचन क्यों छोड़ दिया ।
कौड़ी को तो खूब संभाला, लाल रतन क्यों छोड़ दिया ।।२।।
जिन सुमिरन से अति सुख पावे,तिन सुमिरन क्यों छोड़ दिया
ख़ालस एक भगवान भरोसे,तन मन धन क्यों ना छोड़दिया ।।३।।

(खालस)

२९—ईश्वर मेरा प्राणपति है, उस अन्तर्यामी भगवान के साथ मैं निरन्तर रम रहा हूं ।

प्रभु जी तू मेरो प्रान-पियारा
परिहरि तोहि अवर जो जाचै, तेहि मुख छीया छारा ।
तापर वारि सकल जग डारूं, जो बस होय हमारा ।।१।।

हिन्दू के राम अलाय तुरुक के, बहुविधि करत बखाना ।
दुहु को संगम एक जहां, तहवा मेरो मन माना ॥२॥
रहत निरन्तर अन्तर्जामी, सब घट सहज समाया ।
जोगी पंडित दानी दसो दिसि, खोजत अन्त न पाया ॥३॥
भीतर भवन भयो उजियारा, धरनी निरखि सुहाया ।
जा निसि देस देसंतर धावो, सो घट ही लखि पाया ॥४॥

(धरणी)

६०—चाहे मुझे कुछ ही हो पर ईश्वर का साथ न छूटे ।

मानुस हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गांवके ग्वारन ।
जो पशु हों तो कहा वस मेरो,चरौं नित नन्दकी धेनु मंझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को,जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन ।
जौखग हौं तो बसेरो करौं,मिलि कालिन्दी-कूल कदम्बकी डारन ॥

(रसखान)

बैन वही उन को गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सो सानी ।
हाथ वही उन गात सरैं, अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ॥
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जो करै मनमानी ।
त्यों रसखानि वही रसखानि, जुहैं रसखानि सो है रसखानि ॥

६१—अपनी जान का बलिदान दो और अपने में पिया को पा लो ।

जो पै कोई प्रेम का गाहक होई ।
त्याग करै जो मन की कामना सीस दान दै सोई ॥१॥
हरदम हाजिर प्रेम पियाला पुलकि पुलीक रस लेई ।
जीव पीव महं, पीव जीव मह, बानी बोलत सोई ॥२॥
सोई सभन में, हम सबहन महं, बूझत बिरला कोई ।
कहै गुलाल, वे नाम समाने, मत भूले नर लोई ॥३॥

(गुलाल)

६२—आपा छोड़े तो आप को पाए।

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय।
महंग बड़ा, गथ काम न आवै सिर के मोल बिकाय ॥१॥
तन मन धन पहिले अरपन करि जग के सुख न सुहाय।
तजि आपा, आपुहि ह्वै जीवै, जिन अनन्य सुखदाय ॥२॥
अजपाजाप अकथ को कथनो अलख लखन किन पाया।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन-बुधि-चित न समाया ॥३॥

(भीखा)

६३—सत्य का अनुसरण करो, सत्य में मुक्ति है।

करहु बन्दगी बन्दे सोई। जेहि ते अन्त भला कछु होई ॥१॥
करहु विवाद, न निन्दा करहू। दीन होय, मन अपने रहहू॥२॥
मतसो सत मैं दोऊ बताई। भजहु नाम यह जुक्त ते जाई ॥३॥
त्याग देहु मन गरब गुमाना। तौ भल मानहिं कृपानिधाना ।४।
साधु कहत औ वेद पुरान। 'सत' शब्द या है परमान ॥५॥
दुए अच्छर गहहू तत सार। या है सत मत कीन विचार ॥६।
जगजीवन चरनन लिपटान। निरखहु छबि निरगुन निरबान।७।

(जगजीवन)

६४—सदा भजन-स्मरण करते रहो।

भजन करना है कररा काम ॥
मोही भूले मोह के वश में क्रोधी भूले पड़ि हंकार।
कामी भूले कोप अगिन में लोभी भूले जोरत दाम ॥१॥
जोगी भूले जोग जुगती में, पंडित भूले पढ़त पुरान।
दूलमदास वही जन तिरेंगे, आठ पहर जिन सुमिरो राम॥२॥

(दूलम)

६५—जीवन का क्या भरोसा, भलाई बुराई साथ जाती है, भजन बिना निस्तार न होगा।

पानी बीच बतासा साधो तन का यही तमासा है॥ (ध्रु०)
मुट्ठी बांधे आया रे बन्दा हाथ पसारे जाता है।
ना कुछ लाया ना ले जायगा नाहक क्यों पछताता है ॥१॥
जोरू कौन खसम है किसका कैसा तेरा नाता है।
पड़ा बेहोश, होश कर बन्दे, विषय लहर में माता है ॥२॥
ज्यों ज्यों बन्दे तेरी पलक पड़त है त्यों त्यों दिन नगिचाता है
नेकी बदी तेरे संग चलेगी और सब झूटी बाता है ॥३॥
प्रान तुम्हारे पाहुन बन्दे क्यों रिस किये कुहाता है।
पलटूदास बन्दगी चूके बन्दा ठोकर खाता है ॥४॥

(पलटू)

६६—(मृत्यु-गीत) रे मनुष्य पापों का प्रायश्चित्त कर। ईश्वर के पास जाना है सुकृत ले चल।

पाती आई मोरे प्रीतम की साईं तुरत बुलायो है॥
इक अंधियारी कोठरी, दूज दिया न बाती।
बांह पाकर जम ले चले, कोई सङ्गी न साथी ॥१॥
सावन की अंधियारियां, भादों निज राती।
चौमुख पवन झकोर हो, धड़कै मोरी छाती ॥२॥
चलना तो हमें जरूर है, रहना यहां नाहीं।
का लेके मिलब हुजुर से, गांठी कछु नाहीं ॥३॥
पलटूदास जग आय के, नैनन भरि रोया।
जीवन जन्म गंवाय के, आप सो खोया ॥४॥

(पलटू)

६७—मृत्यु का भय निराधार है, मनुष्य कभी नहीं मरता।

देखु विचार हिये अपने नर, देह धरौ तो कहा बिगरो है।
ये मिट्टी का खेल खिलौना बनो, एक भाजन नाम धरो है॥
नेक प्रतीत हिये नहि आवत, भर्म भुलो नर अवर करो है।
भूषन ताहि गलाह देखु यारी, कंचन ऐन का ऐन घरो है॥

(यारी)

६८—अन्धे को प्रकाश नहीं दीखता, विश्वास के नेत्र से देख।

अन्धा पूछे आफ़ताब को रे, उसे किस मिसाल बताइये जी।
जहां नूर, तजल्ली बिच है रे, बेरंगी रंग दिखाइए जी॥१॥
सब अंधेर मिल दलील करे, बिन दीदा दादर न पाइए जी।
यारी अन्दर यक़ीन बिना, इलिम से क्या बतलाईये जी॥२॥

(यारी)

६९—(पंजाबी गीत) सब ईश्वर के हैं फिर भेदभाव क्यों?

टुक बूझ कौन छप आया है॥

इक नुकते में जो फेर पड़ा, तब ऐन गैन का नाम धरा।
जब मुरसद नुकता दूर किया तब ऐनोऐन कहाया है॥१॥
तुसी इलम किताबां पढ़दे हो, केहे उलटे माने करदे हो।
बेमूजब ऐवें लड़दे हो कहा उलटा वेद पढ़ाया है॥२॥
दुइ दूर करो, कोइ सोर नहीं, हिन्दु तुरक कोइ होर नहीं।
सब साह लखो कोई चोर नहीं, घट-घट में आप समाया है॥३॥

(बुल्लेशाह)

७०—भक्त का ईश्वर से सीधा सम्बन्ध है, बिचौला झगड़ा पैदा करते हैं।

बुल्ला होर ने गलड़ियां इक अल्ला दी गल्ल।
कुज रौला पाया आलमा, कुज कागजां पाया झल्ल॥

(बुल्लेशाह)

७१—मैं को मार और मुक्त हो जा।

बुल्ला मक्के गया गल्ल मुकदी नहीं जिचर दिलों न आप मुकाय।
गंगा गया पाप नहिं छुटदे भावैं सौ सौ गोते लाय ॥१॥
गया गयां गल्ल मुकदी नहीं, भावै कितन पिंड भराय।
बुल्लेशाह गल्ल ताईं मुकदी, जब 'मैं' नू खंडयां लुटाय ॥२॥

(बुल्लेशाह)

७२—आत्म बोध

नया पुराना होयनां घुन नहिं लागै जासु।
सहजो मारा ना मरै, भय नहिं व्यापै तासु ॥१॥
करै घटै छीजे नहीं, ताहि न भिजवै नीर।
ना काहू के आसरे ना काहू के सीर ॥२॥
रूप वरन वाके नहीं, सहजो रंग न देह।
मीत इष्ट वाके नही, जाति पाति नहिं गेह ॥३॥
सहजो उपजै ना मरै सदवासी ना होय।
रात दिवस ताके नहीं, सीत उस्न नहिं सोय ॥४॥
आगि जलाय सकै नहीं, शस्त्र सकै नहिं काटि।
धूप सुखाय सकै नहीं, पवन सकै न हं आटि ॥५॥
मात पिता वाके नहीं, नहीं कुटुम्ब को साज।
सहजो वाहि न रङ्कता, ना काहू को राज ॥६॥
आदि अन्त ताके नहीं, मध्य नहीं तेहि मांहे।
वारपार नहिं सहजिया, लघु दीरघि भी नाहिं ॥७॥
परलय में आव नहिं, उत्पति होय न फेर।
ब्रह्म अनादी सहजिया, घने हिराने हेर ॥८॥
जाके किरिया करम ना, पट दर्शन को भेम।
गुन औगुन ना सहजिया, ऐसो पुरुष अलेस ॥९॥
रूप नाम गुन सू रहित, पाप तत्व सूं दूर।
चरनदास गुरु ने कही, सहजो छिमहि हुजूर ॥१०॥
आपा खोए पाइए, और जतन नहिं कोय।
नीर छीर निर्ताय के, सहजो सुरति समोय ॥११॥ (सहजोबाई)

७३ भारत-वन्दना

द्विज वेद पढ़ैं, सुविचार बढ़ैं, बल पाय चढ़ैं सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहैं, ऋजु पन्थ गहैं, परिवार कहैं वसुधा भरि को॥
ध्रुव धर्म धरै, पर-दुःख हरै, तन त्याग तरैं भवसागर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे प्रभुता निज भारत को॥१॥

महिमा उमड़े, लघुता न लड़े, जड़ता जकड़े न चराचर को।
शठता सटके, मुदिता मटके, प्रतिभा भटके न समादर को॥
विकसे विमला, शुभ कर्मकला, पकड़े कमला श्रम के कर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे प्रभुता निज भारत को॥२॥

मत-जाल जलें छलिया न छलें, कुल फूल फलें तजिमत्सर को।
अघदम्भ दबें, न प्रपंच फबें, गुनबान नवै न निरत्तर को॥
सुमिरें जप से, निरखें तप से, सुरपादप से तुझ अक्तर को।
दिन फेर पिता, वरदे सविता, कर दे प्रभुता, निजभारत को॥३॥

(नाथूराम शंकर)

दूसरा भाग

(अ) उपदेश

(क) सत्य नारायण का रूप है, सत्य की खोज ईश्वर की खोज है।

१—सांचा नांव है सांइ का सोई सतकर जान ॥
निहचल करले बन्दगी, दादू सो परमान ॥ (दादू)

२—साहब के दरबार में, क्या झूठे का काम।
पलटू दोनों ना मिलें, कामी और निष्काम ॥ (पलटू)

३—एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवे मूल को, फूले-फलै अघाय ॥ (कबीर)

४—सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, ता हिरदै गुरु आप ॥ „

५—नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
गिरि सम होय कि कोटिक गुंजा ॥ (तुलसीदास)

६—कुल तजि, भेष बनाइयां, हिये न आयो सांच।
धरनी प्रभु रीझै नहीं, देखत ऐसो नाच ॥ (धरणी)

(ख) प्रेम तथा भक्ति।

७—देखो करनी कमल की, कीनों जल से हेत।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत ॥ (सूर०)

८—दीपक पीर न जानई, पावक परत पतंग।
तन तो तिहि ज्वाला जरयो, चित न भयो रसभंग ॥

९—मीन वियोग न सह सके, नीर न पूछे बात।
देखित्त तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात ॥ „

१०—बांह छुड़ाये जात हो, निबल जानि के मोहि।
हिरदे ते जब जागे, तब मैं जानूं तोहि॥ सूरदास
११—सदा संघाती आपको, जिय को जीवन प्रान।
सो तू बिसरयो सहज ही, हरि ईश्वर भगवान॥ ,,
१२—चकवी री चलि चरन सरोवर, जहं नहिं प्रेम वियोग।
जहं भ्रमनिशि होत नहिं कबहूं, वह सरवर सुखयोग॥ ,,
१३—जिनकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥
१४—जेहिके जेहि पर सत्य सनेहू। सो तिहि मिलत न कछु संदेहू॥
१५—सोह न राम प्रेम बिन ज्ञानू। कर्णधार बिनु जिमि जलयानू॥
१६—जाति पाति धन धर्म बड़ाई। प्रिय परिवार सदा समुदाई॥
सब तजि रहहिं तुमहिं लवलाई। ताके हृदय बसहु रघुराई॥
—तुलसीदास

१७—सब बन तुलसी होय रहे, सब पर्वत सालिगराम।
सब नदियां गङ्गा भईं, जब मन प्रगटे राम॥
१८—तुलसी सब छल छांड़ि कै, कीजे राम सनेह।
अन्तर पति सों हैं कहां, जिन देखी सब देह॥
१९—कामहिं नारि पियारि जिमि, लोभहि प्रिय जिमि दाम।
ऐसे हो कब लागि हो, तुलसी के मन राम॥
२०—जिमि मनि बिनु व्याकुल भुजंग, जल बिनु व्याकुल मीन।
तिमि देखे रघुनाथ बिनु, तरपत हूं मैं दीन॥
२१—अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म रति रामपद, यहि वरदान न आन॥
२२—आरत पालु कृपालु जो राम, जेहि सुमिरे तेहि को तहं ठाढ़े।
नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े॥
सेवक एक तें एक अनेक भये, तुलसी तिहुं ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहिलादहि को, जिन पाहन ते परमेसुर काढ़े॥
तुलसीदास

२३—जननी जनै तो भक्त जन, कै दाता कै शूर।
नाहीं तो तू बांझ रहु, काहे गंवावे नूर॥

(कबीर)

२४–जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जानि मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्रान॥
२५–प्रेम बराबर योग नहिं, प्रेम बराबर ध्यान।
प्रेम भक्ति बिनु साधवा, सब ही थोथा ज्ञान॥
२६-गदगद बाणी कंठ में, आसूं टपकै नैन।
मैं तो बिरहिन पीय की, तरपत हूं दिन रैन॥
२७–पिय चहो के मत चहो, मैं तो पिया की दासि॥
पिया के रंग राती चहूं, जग से रहत उदासि।
२८–ज्यों तीया पीहर बसै, सुरत रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जग में रहे, प्रभु को भूले नाहिं॥
२९–कमलन को रवि एक है, रवि को कमल अनेक।
हमको तुमको बहुत हैं, तुमसे हमको एक॥
३०–प्रेम भाव एक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावै घर में बास कर, भावै बन में जाय॥
३१–जल में बसै कमोदनी, चन्दा बसै अकास।
जो जाके मन में बसै, बसै सो ताके पास॥
३२–प्रेम तो ऐसा कीजिए, जैसे चन्द चकोर।
घींच टूट भइमां गिरै, चितवै वाही ओर॥
३३–गहा टेक छांड़ै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहा अंगार को, जाहि चकोर चबाय॥
३४–पढ़ पढ़ के सब जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम के, पढै सो पंडित होय॥
३५–पढ़ पढ़ के पत्थर भये, लिख लिख भये जो ईंट।
कबिरा अन्तर प्रेम की, लागी नेक न छींट॥

३६—हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग ।
पीड़ सहै बिनु पद्मिनी, पूत न लेत उछंग ॥
(कबीर)

३७—कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय ।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन कुल खोय ॥
३८—जब लगि भक्ति सकाम है, तब लग निष्फल सेव ॥
कह कबीर वह क्यों मिले, निष्कामा निज देव ॥
३९—पीय बुलावे भाव से, मो पै गया न जाय ।
घन मैली पिउ ऊजला, लागि न सकहूं पाय ॥
४०—प्रीतम को पतियां लिखूं, जो कहुं होय विदेश ।
तन में मन में नयन में, ताको कहा संदेश ॥
४१—कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढे बन माहं !
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जानै नाहिं ।
४२—लिखा लिखी का है नहीं, देखा देखि की बात ।
दुलहा दुलहिन मिल गये, फीकी पड़ी बरात ॥
४३—नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि कै, पिय को लिये रिझाय ॥
४४—जब मैं था तब गुरु नही, अब गुरु हैं हम नाहिं ।
प्रेमगली अति सांकरी, जामें दुइ न समाहि ॥
४५—मेरे आगे में खड़ा, तासों रहा लुकाय ।
कबिरा प्रघटिल पीय है, जो आपा मिट जाय ।
(कबीर)

४६—तुलसी मन तो एक है, चाहै जिधर लगाय ।
भावे हरि की भक्ति करि, भावै कुमति कमाय ॥
४७—व्याधा बधो पपीहरा, परो गंग जल जाय ।
चोंच मूंद पीवै नहीं, धिग पिये, मो प्रन जाय ॥

४८--भक्ति भाव बूझे बिना, ज्ञान उदय नहिं होय।
बिना ज्ञान अज्ञान की, काट सकै नहिं कोय ॥
४९–उत्तम और चंडाल घर, जहं दीपक उजियार।
तुलसी मते पतंग के, सभी जोत एक सार ॥

तुलसीदास

५०–इक अंगी, बिनु कारनहिं, इक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सरवस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥
५१–डरै सदा चाहे न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहिकै, प्रेम बखानै सोय ॥
५२--दम्पति सुख और बिषयरस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इनते परे बखानिये, शुद्ध प्रेम रसखान ॥

रसखान

५३–प्रभु को पावे केवल प्रेम में–

ना है मन्दिर में ना हैं पूजा में, नहिं घण्टा की घोर में।
हरिचन्द प्रभु बांधे डोले, एक प्रेम की डोर में ॥
५४–काहू के धन सोना रूपा, काहू के हाथी घोरा हो ॥
काहू के मन मानिक मोती, एक धनी मोरा हो ॥

धरणी

५५–सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज, की सरसिज बिनुसूरे।
जौबन बिनु तन, तनु बिन जौबन, की जौवन पिय दूरे ॥

विद्यापति

५६–प्रेम लहरि गहि ले गई अपने प्रीतम पास।
आतम सुन्दरी पीव कों बिलसे दादू दास ॥
५७--मैं सीस ना दिया रे, भरि प्रेम ना पिया रे, मैं क्या किया रे।
हूं रहूं उदासा रे, प्रभु तेरी आसा रे, कहैं दादू दासा रे ॥
५८--इह जग जीवत तो भला, जब लग हिरदै राम।
राम बिना जे जीवना, सो दादू बेकाम ॥

५६-ज्ञान ध्यान सब छाड़ि दे, जप तप साधन जोग।
दादू बिरहा ले रहै, छाड़ि सकल रस भोग॥
६०-तू है तैसी भगतिदे, तू है तैसा प्रेम।
तू है तैसी सुरत दे, तू है तैसा क्षेम॥

दादू

६१-कहा करौं बैकुंठ लै कल्पबृक्ष की छांह।
अहमद ढाक सुहावने, जहं प्रीतम गल बांह॥

अहमद

६२-चलो सखी तहं जाइये, जहां बसै बृजराज।
गोरस बेचन हरि मिलन, एक पंथ दुह काज॥
एते करता कहां हैं, वहां तो साहब एक।
जैसे फूटी आरसी, टूक टूक में देख॥

ग़रीब दास

दिल के अन्दर देहरा जा देवल में देव।
हरदम साखी भूत है, करो साधु की सेव॥

ग़रीबदास

सुनत चिकार पिपील की ताहि रटहु मन माहिं।
दूलनदास विश्वास भज साहिब बहिरा नाहिं॥

दूलनदास

६३-जो मैं ऐसा जानती, प्रीत किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा फेरती, प्रीति न कीजै कोय॥
६४-चन्द को चकोर चाहै, दीपक पतङ्ग दाहै॥
जल बिनु मीन जैसे, तैसी प्रीति हमारी है॥
६५-बिनती करो हे श्याम, लागौं मैं तुम्हारे पास।
मीरा प्रभु ऐसि जानो, दासी तुम्हारी है॥

मीराबाई

६६--पलटू ऐसी प्रीति कर , जल औ मीन समान ।
जहां तनकजल •बिछुड़े, छांड़ि देत है प्रान ॥

(पलटू)

६७--ज्यों अमली के चित अमल है, सुरे के संग्राम ।
निर्धन के चित धन बसै, यू दादू के राम ॥

(दादू)

६८--जिमि रहीम चित आपनो कीन्हीं चतुर चकोर ।
निशि वासर लागे रहो कृष्ण चन्द्र की ओर ॥

(रहीम)

६९—अद्भुत गति लह प्रेम की लखी सनेही आय ।
जुरै कहूं टूटै कहूं कहूं गांठ परि जाय ॥

(रसनिधि)

७०--जो तेरे घट प्रेम है तो कहि न सुनाय ।
अन्तरजामी जानि हैं अन्तरगत के भाव

७१--सुमिरन ऐसा कीजिये दूजा लखे न कोय ।
हांठ न फरकत देखिये प्रेम राखिये गोय ॥

(मलूक)

७२--जैसे माता गरभ को राखै जतन बनाय ।
ठेस तो छीन है भगति दुराय ॥

(मलूक)

७३--बुल्ला आसक हो यों रब्बदा , मुलामत होई लाख ।
लोग काफर आखदे, तू आहो आहो आख ॥

(बुल्लेशाह)

७४--पौढ़ीहती पलंगापर मैं निसि,ज्ञान रू ध्यान पिया मन लाये ।
लागि गई पलके पलसों, पल लागत ही, पलमें पिय आये ॥
ज्यों हि उठी उनके मिलिवै, कहं जागि परी, पिय पास न पाये ।
मीरन और तो सोयके खोवत, मैं सखि, प्रीतम जाग गंवाये ॥

(मीरन)

७५—सुपने में सांई मिले, सोवत लियो जगाय ।
आंख न खोलूं डरपता, मत सुपना हो जाय ॥
(कबीर)

७६—भगति ऐसी सुनहु रे भाई । आई भगति तब गई बड़ाई ।
(रैदास)

७७—प्रेम दिवाने जो भये पलट गया सब रूप ।
सहजो दृष्टि न आवही कहा रंक कह भूप ॥
(सहजोबाई)

७८—हरी हितु से हेत कर, संसार आसा त्याग ।
दासि मीरा लाल गिरधर सहज कर वैराग ॥
(मीरा)

७९—प्रेम प्रीतके बस भगवाना । सकल सास्तर कियो बखाना ।
८०—भक्त हिये में प्रेमजो जागे । तो हरि दरसत रहैं जो आगे ॥
८१—सकलशिरोमणि प्रेमहि जानो । चरणदास निश्चय मनआनो॥
(चरणदास)

८२—यह सिर नवै तो राम को, नाहीं गिरियो टूट ।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जावो छूट ॥
८३—सब इन्द्रियन को रोककर, हरि चरणनको ध्यान ।
बुद्धि रहै सुरति रहै, तो समाधि मत जान ॥
ध्याता बिसरे ध्यान में, ध्यान लीन हो ध्येय ।
बुद्धि लीन, सुरत ना रहे, पद समाधि लख लेय ॥
८४—जब यह ध्याता ध्यान में, ध्येय रूप हो जाय ।
पूरा जानो ध्यान तब, यामें संसय नाय ॥
ध्येय रूप होना यही, भिन्न ज्ञान नहिं होय ।
छीर नीर जब मिलत है, सूझत नाहीं दोय ॥
(चरणदास)

८५—सुरत सधी न मन सधा, यों ही भक्ति की हान ।
साथ सुरत, मन अन्तर, राचे, सोई भक्ति प्रमान ।।

पनपदास

न सेवा तथा उपकार

८६—तुलसी जो जन हेत सों, सेवा जाने कोय ।
नर को वश करवैं कहा, नारायण वश होय ।।

तुलसीदास

८७　　परहित वश जिनके मन माहीं ।
तिन कह जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।

८८　　सन्त उदय सन्तन सुखकारी ।
विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ।।

८९　　सन्त सहहि दुख परहित लागी ।
परदुख हेतु असन्त अभागी ।।

९०　　भरुज-तरु सम, सन्त कृपाला ।
परहित सह नित विपति विशाला ।।

९१—बिना कहेहु सत पुरुष, पर की पुरवै आस ।
कौन कहत है सूर को, घर घर करत प्रकास ।।

९२—बिरले नर पंडित गुनी, बिरले बूझन हार ।
दुख खण्डन बिरले पुरुष, ते उत्तम संसार ।।

९३—बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पन्छी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ।।

कबीर

९४—पलटू सोई पीर है, जो जानै परपीर ।
जो परपीर न जानही, सो काफर बेपीर ।।

पलटू

९५—जो दुखिया संसार में, खोवो तिनका दुःख ।
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ।।

मलूक

९६–जीवन को सब कोउ कहैं, मरन कहैं नहिं कोय ।
सती सूरमा पुरुष को, मरतहिं मंगल होय ॥

योधराज

९७–शिर राखे शिर जात है, शिर काटे शिर सोय ।
जैसे बाती दीप की, कटे उजारा होय ॥
९८–तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पान ।
कहि रहीम पर काज हित, सम्पत्ति सुचहिं सुजान ॥
९९–यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग ।
बांटन वारे के लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥
१००–जे गरीब पर हित करे, ते रहीम बड़ लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताइ जोग ॥
१०१–बड़े, दीन के दुख सुने, लेत दया उर आनि ।
हरि हाथी सों कब हुथी, कहु रहीम पहिचान ॥

रहीम

१०२–यही सयानो काम राम को सुमिरन कीजै ।
परस्वारथ के काज शीश आके धर दीजै ॥
१०३–जब लग मन के बीच कछु स्वारथ को रस होय ।
सुद्ध सुधा कैसे कहैं परै बीच में तोय ॥

गिरिधर

१०४–पसु पच्छिहु जानही अपनी अपनी पीर ।
तब सुजान जानैं तुम्हें जब जानौ परपीर ॥

रसनिधि

(घ) जो तुम्हारा भला चाहे उसका भी भला करो ।

१०५–तुलसी सन्त सुअम्बतरु, फूलि फलहिं परहेत ।
इतते ये पाहन हनै, उतते वे फल देत ॥

तुलसीदास

१०६—जो तोको कांटा बुवे, ताहि बोय तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाही को तिरशूल॥

(कबीर)

१०७—आपा तजो औ हरि भजो, नख शिख तजो विकार।
सब जिउ ते निरवैर रहु, साधु मता है सार॥

(कबीर)

१०८—ऐसी जरना चाहिये, ज्यों चन्दन को अंग।
मुख से कछू न कहत है, तन को खात भुजंग॥

(गरीबदास)

१०९—सज्जन को दुख हू दिये, दुर्जन पूरै आस।
जेते चन्दन को घिसे, सुन्दर देत सुवास॥

११०—जो तू चाहे अधिक रस, सीख ईख से लेय।
जो तोसों अनरस करै, ताहि अधिक रस देय।

(वृन्द)

१११—किससे बेरी ह्वै रहा, औ दूजा कोउ नाहिं।
जिसके अंग ते उपजा, सोई है सब माहिं॥

(दादू)

११२—धरनी काहि से बैरिये, औं दीजै काहि सराप।
दूजा कितहुं न देखिये, सब घट आपै आप॥

(धरणी)

(च) दया

११३—दया धरम का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान॥

(तुलसी)

११४—जहां दया तहां धर्म है, जहां लोभ तहं पाप।
जहां क्रोध तहं काल है, जहां छमा तहं आप॥

११५—दया दिल में राखिये, तू क्यों निर्दय होय ।
साईं के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर दोय ॥
११६—दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव के स्वांस सों, लोह भसम हो जाय ॥
११७—दया धरम हिरदै बसै, बोले अमृत बैन ।
तेई ऊंचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥
११८—सब पानी की चूपरी, एक दया जग सार ।
निज-पर-आतम चीन्हिया, तेही उतरे पार ॥
(कबीर)

११६—मक्का मदीना द्वारका, बदरी और केदार ।
बिना दया सब झूठ हैं, कहै मलूक विचार ॥
१२०—दुखिया जन कोई दूखिये, दुखिये अति दुख होय ।
दुखिया रोय पुकारि है, सब गुड़ माटी होय ॥
१२१—हरी डार न तोड़िये, लागै छूरा तान ।
दास मलूका यू कहैं, अपना सा जिव जान ॥
(मलूक)

(छ) क्षमा
१२२—बड़े सनेह लघुन पर करहीं ।
गिरि निज शरण सदा तृण धरहीं ॥
१२३—क्षमा बड़ेन को चाहिये, छोटन को उत्पात ।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥
(रहीम)

(ज) नम्रता
१२४—वेद पुरान कहै,जग जान. गुमान गोविन्दहिं भावत नाहीं
(तुलसी)

१२५—सहजो नन्ना बालिका, महल भूप के जाय ।
नारी परदा ना करै, गोदहिं गोद खिलाय ॥
(सहजोई)

१२६—कूड़े करहि तकब्बरी, हिन्दू मूसलमान।
लहन सजाई नानका, बिनू नावैं सुलतान॥

नानक

१२७—कबिरा गर्व न कीजिये, रंक न हंसिये कोय।
अभी तो नाव समुद्र में, ना जाने क्या होय॥

कबीर

१२८—लेने को हरिनाम है, देने को अनदान।
तरने को आधीनता, डूबन को अभिमान॥

कबीर

१२९—रोड़ा होइरहु बाटिका, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै, ताहि मिलै निज नाम॥
१३०—सबतें लघुताई भली, लघुता ते सब कोय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय॥
१३१—बुरा जो देखन में चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौ आपना, मुझसा बुरा न कोय॥

कबीर

(झ) ईश्वर में श्रद्धा तथा विश्वास रखो, चिन्ता मत करो, होनी से मत डरो, दुःख सहन करो, ईश्वर जो करता है, भला करता है, सब कुछ उस ही का है, हम भी उसी के हैं—

१३२—दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईं नहिं भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल॥

बिहारी

१३३—भोजन छादन की नहीं, सोच करें हरिदास
विश्व भरण प्रभु करत हैं, तो क्यों रहै उदास॥
१३४—पुनि श्रीमुख गीता विषे, भाष्यो अर्जुन पास।
योग क्षेम सब हौं करों, जिनको मेरी आस॥

हरिदास

१३५–गर्भवास अति त्रास में, जहां न एकों अंग।
सुनि सठ तेरो प्राणपति, तहां न छांड़िमो संग॥
सूरदास

१३६–जाको राखे साइयां, मारि न सकिहै कोय।
बार न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय।
१३७–हरि सा हीरा छांड़िकै, करैं आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास॥
रैदास

१३८–जो प्रभु कीनों सो भलकर मानो। इहै सुमत साधु ते पाई।
सब में रम रहा प्रभु एकै। पेख पेख नानक बगसाई॥
नानक

१३९–होनी वोही जो राम रच राखा।
क्यों करि तर्क बढ़ावहिं शाखा॥
तुलसीदास

१४०–कहत, मलूकदास छोड़ मोह लोक आस।
रामधनी पाइके अब काकी सरन जाइए॥
१४१–भरोसे रह इक राम के। सुकृत हुँ नित कीजै॥
संकट पड़े हरज नहिं माने। जिय का लोभ न कीजै॥
मलूक

(ट) दुख में सहन करना तथा ईश्वर भजन करना उचित है।
१४२–सुख के माथे सिल परे, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम जपाय॥
१४३–हंस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हांसी खेलें पिउ मिलें, तौ कौन दुहागिन होय॥
कबीर

१४४–जहां जहां दुख पाइया, गुरु का थापा सोय।
जबहीं सिर टक्कर लगै, तब हरि सुमिरन होय॥
मलूक

१४५–सुनलो पलटू भेद यह, हँसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है सुख में नरक निदान॥

पलटू

(ठ)–सद्गुरु, सत्संग, सद्भावना, सदाचरण-द्वारा ईश्वर-भक्ति दृढ़ होती है।

सद्गुरू

१४६–गुरगोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया बताय॥

कबीर

सत्संग

१४७–एक घड़ी आधी घड़ी, आधी ते पुनि आध।
भीखा संगत साधु की, कटै कोटि अपराध॥

भीखा

१४८–हरि में साध साध में हरि है हरि में अन्तर नाहिं।
दास गुलाल साधु की संगत नीच परम पद पाहिं॥

गुलाल

१४९–पलटू जो कोउ सन्त है, सब हमरे सिरताज।
सर्वगी कोउ एक है, राखे सबकी लाज॥

१५०–काम क्रोध जिनके नहीं, लगै न भूखहु प्यास।
पलटू उनके दरस सों, होत पाप को नास॥

१५१–सत संगति में जाइ के, मन को कीजै सुद्ध।
पलटू उहांन जाइये, जयवां उपजि कुबुद्धि॥

पलटू

१५२–निराकार की आरसी, संतन ही की देह।
लखा जो चाहो अलख को, इनही में लखि लेह॥

१५३–कबिरा संगत साध की, ज्यों गंधी की बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुवास॥

१५४–मथुरा भावैं द्वारका, भावैं जा जगनाथ।
साधसङ्ग हरिभजन बिनु, कछू न आवै हाथ॥

(कबीर)

१५५–गली गली को जल बहि आयो, सुरसरि जाय समायो।
सङ्गत के परताप महातम, नाम गंगोदय पायो॥
१५६–तुम चन्दन हम रेंड बापुरे, निकट तुम्हारे आसा।
संगत के परताप महातम, आवै वास सुवासा॥

(रैदास)

१५७–तुलसी सङ्गत साध सों, दुर्जन भव तर जाय।
जैसे लोह समुद्र में, काठ सङ्ग तर जाय॥
१५८–बिनु सतसङ्ग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
१५९–को न कुसङ्गति पाय न साई। रहैं न नीच मतैं चतुराई॥
१६०–कर कुसङ्ग चाहै कुशल, तुलसी यह अपसोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बसत पड़ोस॥
१६१–असन वसन सुतनारि सुख, पापहुँ के घर होय।
संत समागम राम धन, तुलसी दुर्लभ दोय।
१६२–तुलसी या जग आय के, पांच रतन हैं सार।
सन्त मिलन ओ हरिभजन, दया दीन उपकार॥
१६३–तुलसी या संसार में, भांत भांत के लोग।
सबसे हिल मिल चालिए, नदी नाव संयोग॥
१६४–तुलसी या संसार में, सबसों मिलिए धाय।
ना जाने किस भेष में, नारायण मिल जाय॥

(तुलसी)

१६५–बिसर गई सब तात पराई, जबते साध सङ्गत मोह पाई।
कोई बैरी ना है बेगाना, सकल सङ्ग हमको बन आई॥

नानक

१६६–टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर फिर पोइये, टूटे मुक्ताहार॥

सद्‌भावन।

१६७–संगति भई तो क्या हुआ, जो हिरदा भया कठौर।
नौ नेजे पानी चढ़ा, तऊ न भीजी कोर॥

१६८–माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दहुं दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

१६९–दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय॥

कबीर

१७०–तुलसी पिछले पाप से, हरि चरचा न सुहाय।
जैसे ज्वर के जोर में, भोजन की रुचि जाय॥

१७१–तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्य व्रत, राम भरोसो एक॥

१७२– राम रमापति कर धन लेहू। खींचहु चाप मिटे सन्देहू॥

१७३–राम नाम जपते रहो, जब लग घट में प्रान।
कभूं तो दीन दयाल के, धुनक परेगी कान॥

तुलसी

१७४–रैदास रात न सोइया, दिवस न करिये स्वाद।
अहिनिस हरिजी सुमिरिये, छांड़ि सकल परिवार॥

सदाचरण

रैदास

१७५–कर्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा॥

१७६–तुलसी रेखा करम की, मेट सके नहिं राम।
मेटे तो अचरज नहीं, सोच कियो है काम॥

१७७–राम झरोखे बैठ के, सब का मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी, ताको तस फल देय॥

१७८–तुलसी जब जग में भये, जगत हंसे तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलो, कि तुम हंसमुख जग रोय ॥
(तुलसी)

१७९–होय बुराई ते बुरो, यह कीन्हें निर्धार।
गाड़ खनै जो और को, ताको कूप तयार ॥
(वृन्द)

१८०–करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोई ।
बोये बिरवा आक को, आंब कहां ते होय ॥
१८१–करना था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछताय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहां से खाय ॥
१८२–कहता हूं कह जात हूं, कहा जो मानो हमार।
जाका गल तुम काट हो, सो गल काट तुम्हार ॥
१८३–परिपूरण पाप के कारण ते, भगवन्त कथा न रुचै जिनको।
तिन एक नारि बुलाय लई, नचावत हैं रिनको दिनको ॥
मृदंग कहै धिग है धिग है, मंजीर कहै किनको किनको ।
तब हाथ उठाय के नारि कहै, इनको इनको इनको इनको ॥
१८४–पंडित तेरी पोथियां, ज्यों तीतर का ज्ञान।
औरन सुगन बतावहीं, आपा फंद न जान ॥
(कबीर)

१८५–धरनी भरमी ब्राह्मने, वसहि भरम के देश।
करम चढ़ावहि आप सिर अवर जेले उपदेश ॥
१८६–करनी पार उतारि है, धरनी कियो पुकार।
साकित बामन नहिं भला भक्ता भला चमार ॥
(धरनी)

१८७–फल कारन फूलै बनराई ! उपजै फल, तब पुहुप बिलाई।
ज्ञानहि कारन करम कमाई। उपजै ज्ञान तो करम नसाई ॥
(रैदास)

(ङ) मन वचन तथा कर्म की साधना।

(१) मन की साधना

१८८,-काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
　　का पंडित का मूरखा, दोनों एक समान ॥

१८९--सोई ज्ञानी सोई मुनि जन, सोई दाता ध्यानि।
　　तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि ॥

१९०--जब लगि नहिं हृदय प्रकाश, और विषय आस मनमाहीं।
　　तुलसीदास तब लग जग, योनी भर्मत, सुख नाहीं ॥

१९१--परालबध पहले बनो, पाछे बनो शरीर।
　　तुलसी यह अचरज्ञ बड़ो, मन नहिं बांधे धीर ॥

१९२--जहं राम नहिं काम वहं, जहं काम नहिं राम।
　　कहा तुलसी कैसे बसै, रवि रजनी इक धाम ॥

१९३--जननी सम जानहि पर नारी, धन पराय विषते विषभारी।

१९४--तुलसी यह संसार में, सोई भये समरत्थ।
　　इक कंचन इक कुचन को, जिन न पसारे हत्थ ॥

(तुलसी)

१९५--परयोषित परसै नहीं, ते जीते जग बीच।
　　परतिय तक्कत रैन दिन, ते हारे जग नीच।

(चन्द्र)

१९६--माखी गुड़ में पड़ रही, पंख रह्यो लपटाय।
　　हाथ मलै और सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥

१९७--तीर तुपक से जो लड़ें, सो तो शूर न होय।
　　विषय जीत भगती करे शूर कहावे सोय ॥

१९८--आसन मारै क्या हुआ, मरी न मन की आस।
　　तेली केरा बैल ज्यों, घर ही कोस पचास ॥

(कबीर)

१९९--काया कठिन कमान है, खीचै बिरला कोय।
मारै पांचो मिरगला, दादू सूरा सोय॥
२००--आपा मेटै हरि भजे, तन मन तजै विकार।
निरबैरी सब जीव सों, दादू यहुमत सार॥
२०१--मन निर्मल तन निर्मल भाई, आन उपाय विकार न जाई।
(दादू)

२०२--राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊं। फल और मूल अनूप न पाऊं।
थनहर दूधजो बछरू जुठारी। पुहुपभंवर जलमीन बिगारी॥
मलयगिर बेधियौ भुअंगा। विष अमृत दोऊ के संगा।
मनही पूजा मनही धूप। मनही सेऊं सहज सरूप॥
पूजा अरचा न जानूं तेरी। कह रैदास कवन गति मेरी॥
(रैदास)

२०३--भलो होत न मारिबो, काहू को जग माहिं।
भलो मारिबो क्रोध को, ता सम नर रिपु नाहिं॥
(लाल)

२०४--लोभ सरिस अवगुन नहीं, तप नहीं सत्य समान।
तीरथ नहिं मन शुद्ध सम, विद्य सम धन आन॥
(विदुर)

२०५--सील संतोष विवेक बुधि, दया धर्म इक तार।
बिन निहचै पावे नहीं, साहब का दीदार॥
(गरीबदास)

२०६--समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय॥
(बिहारी)

२०७--जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुकि न जाहि।
जल में जो छाया परी, काया भीजत नाहिं॥
(रहीम)

२०८--जग माँहीं ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज सर माहिं।
रहे नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहें ॥
(चरणदास)

(२) बाणी की साधना।

२०९--तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन एक मंत्र है, तजि दे बचन कठोर॥
(तुलसी)

२१०--ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
अपना तन सीतल करे, औरन को सुख होय॥

२११--गार अंगारा क्रोध झल, निन्दा धूंवा होय।
इन तीनों को परिहरै, साध कहावै सोय॥
(कबीर)

२१२--बचन तजै नहिं सतपुरुष, तजै प्रान अरु देस।
प्रान पुत्र दुहुं परिहर्यो बचन हेतु अवधेस॥
(गिरि)

२१३--रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्रान जाएं परबचन न जाई।
(तुलसी)

(३) कर्म की साधना।

२१४—मात पिता गुरु प्रभु की बानी।
बिनहिं बिचार करिय शुभ जानी॥

२१५--सुन जननी सोइ सुत बड़ भागी।
जो पितु मात बचन अनुरागी॥

२१६–तनय मातु पितु पोषनहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

२१७–जहं लग नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तिय तरणिहु ते ताते॥

२१८–जहां सुमति तहं, संपति नाना।
जहां कुमति तहं, विपति निधाना॥
२१९–ठीक प्रतीति कहे तुलसी जग, होय भले को भलाई भलाई।
(तुलसी)

(द) विवेक।
२२०—हंसा पय को काढ़ि ले, छीर नीर निरवार।
ऐसे गहे जो सार को, सो जन उतरे पार॥
(कबीर)

२२१—कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हें।
कहा भयो जे चरन पखारे, जो लौ तत्व न चीन्हें॥
(रैदास)

(त) स्वाधीनता।
२२२—पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषे, कनक पींजरे दीन।
(गिरि)

(थ) आत्म पौरुष।
२२३—केहरि को अभिषेक कब, कीन्हों विप्र समाज।
निज भुजबल के तेज तें, विपिन भयो मृगराज॥
(गिरि)

२२४—नाम जपो निर्भय रहो, अंग न व्यापै पीर।
जरा मरन, संसय मिटै, गावै दास कबीर॥
(कबीर)

२२५—मिसरी मिसरी कीजिए, मुख मीठा नाहिं।
मीठा तब ही होएगा, छिटकावै माहिं॥
बातों ही पहुंचौ नहीं, घर दूरि पयाना।
मारग पंथी उठ चलै, दादू सोह सयाना॥
(दादू)

२२६—मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस॥

(कबीर)

(द) यत्न के साथ सुकृत करो।

२२७—आय जगत में क्या किया, तन पाला कै पेट।
सहजो दिन धंधे गया, रैन गई सुख लेट॥

(सहजो)

२२८—मन की दुविधा ना मिटै, मुक्ति कहां ते होय।
कउड़ी बदले नानका, जन्म चल्या नर खोय॥

(नानक)

२२९—बिन खोजै से ना मिले, लाख करै जो कोय।
पलटू दूध से दही मिले मथवे से घिव होय॥

(पलटू)

२३०—जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
जो बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ॥

(कबीर)

२३१—तुलसी कर पर कर करौ, कर तर कर न करौ।
जा दिन कर तर करौ, ता दिनहि मरन करौ॥

(तुलसी)

२३२—डरै न काहू कष्ट सों, जाहि प्रेम की बान।
भौंरन छोड़े केतकी, तीखे कंटक जान॥

(वृन्द)

(ध) जाति के अभिमान से हानि।

२३३—जात न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

२३४—नीच नीच सब तर गये, संत चरण लवलीन।
जात हिं के अभिमान से; डूबे बहुत कुलीन॥

२३५-जाति पांति पूछे ना कोई । हरि को भजे सो हरि का होई ॥
कबीर

२३६ रे चित चेत अचेत काहे, बालक को देख रे ।
जाति ते कोई पद नहिं पहुँचा, राम भगति विशेष रे ॥
(रैदास)

(न) बाह्य पूजापाषंड का तिरस्कार, मानसिक पूजा का स्वीकार ।

२०७-साधो दुनिया बावरी, पाथर पूजन जाय ।
मलूक पूजे आत्मा, कछु मांगे कछु खाय ॥
२३८-किरतम देव न पूजिये, ठेस लगे फुटि जाय ।
कहैं मलूक सुभ आतमा, चारों युग ठेराय ॥
(मलूक)

२३९-जेती देखी आतमा, ते ते सालिगराम ।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम ॥
२४०-पाहन पूजे हरि मिलौ, तो मैं पूजौं पहार ।
ताते या चाकी भली, पीस खाय संसार ॥
(कबीर)

२४१-जहं तहं डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करो सो सेवा ।
जब सोवौं तब करौ दंडवत् ,पूजौं और न देवा ॥
२४२-मन मथुरा दिल द्वारिका, काया काशी जान ।
दस द्वारे का देहरा, तामें जाति पिछान ॥
२४३-तन के तत मन्दिर को देखो जाई ।
आतम सा देव जाहि पूजो भाई ॥
पाहन की मूरत का झूठ पसारा ।
तुलसी पूजै बेहोस जन्म बिगारा ॥
२४४-पूरन ब्रह्म वेदान्त कहै तुहि आप अपनपौ आप भुलाना ।
पाहन पूजत जन्म गयो कछु सूझिपरी नहिं लाभ न होना ॥
(तुलसीसाहब)

२४५--तोडं न पाती पूजूं न देवा, सहज समाधि करूं हरि सेवा।

(रैदास)

२४६-- जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काक।
पलटू तन करु देहरा, काहे पूजि पषान ।।

(पलटू)

२४७--तीरथ गए कोइ नहिं तारे चलि चलि मरि जाय।
जल बिच आस लगाय के मगरहु का तन पाय ।।

(धरणी)

२४८-- सब घट ब्रह्म और नहिं दूजा। आतमदेव के निर्मल पूजा।
सत्तनाम है निर्मल बानी। ताको खोजहुँ पंडित ज्ञानी ।।

(यारी)

२४९ जानौं नहीं देव मैं दूजा। भीखा एक आत्मा पूजा ।।

(भीखा)

२५०--चित के अन्दर चांदना कोटि सूर ससि भान।
दिल के अन्दर देहरा काहे पूजे पषान।

(गरीबदास)

२५१--आदि सनातन पंथ हमारा। जानत नहिं यह संसार ।।
पोथी सेती पंथ अलहदा। भेषों बिच पड़ा है बैदा ।।
देवल जाहि मसजिद माहीं। साहिब का सिरजा मानत हैं ।।
पंडित काजी डोबी बाजी। नाहिं नीर खीर को छानत हैं ।।
दोनों दीन यकीन न आसा। पूरब वे पछिम वे निवासा ।।
दुहूं दीन का छांड़ा लेखा। उत्तर दक्खिन में हम देखा ।।
गरीबदास हम निहचै जाना। चारों खूट दसों दिस ध्याना ।।

(गरीबदास)

२५२--जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूसि परनारि।
जो चाहै दीदार को, एती वस्तु निवारि ।।

(कबीर)

२५३--न्हाय धोये क्या भया, जो मन का मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय।।
(कबीर)

२४५--भीतर मैल चहल के लागी ऊपर तन का धोवै है।
अविगाते मुरति महलके भीतर वाका पथ न जोव है।।
(दरया साहब बिहारी)

(प) आत्मा का दर्शन।
२५५--राम राम घट में बसें, ढूंढ़त फिरैं उजाड़।
कोई कासी कोई पाग में. बहुत फिरैं झकमार।।
(मलूक)

२५६--देख रूप जेहि है नहीं अधर धरो नहिं देह।
गगन मंडल के मध्य में, रहत पुरुष विदेह।।
२५७--निर्मल दृष्टि आतमा जाकी, साहब अधारा।
कहत कबीर वही जन आवे 'तै' 'मैं' तजै विकारा।।
२५८--सुमिरन सुरत लगाय कर, मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट देय कर, अन्दर का पट खोल।।
(कबीर)

२५९--तीनों बन्द लगाय के, सुनि अनहद टङ्कोर।
नानक सुन्न समाधि में, नहीं सांझ नहिं भोर।।
(नानक)

२६०--तन सों सुमिरन करें, आतम सुमिरन एक।
आतम आगे एक रस, दादू बड़ा वमेक।।
(दादू)

२६१--आये एकंकार सब, साईं दिये पठाय।
दादू न्यारे नांव धर भिन्न-भिन्न ह्वै जाय।।
२६२--आतम देव अराधिये, विरोधियौ नहिं कोई।
अराधै सुख पाइये, विरोधै दुख होई।।

२६३--ज्यों आपै देखै आपको, त्यों जे दूसर होइ।
तौ दादू दूसर नहीं, दुःख न पावै कोई॥
२६४--दादू समकर देखिये, कुञ्जर कीट समान।
दादू दुबिधा दूर कर, तज आपा अभिमान॥
२६५--आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निरबैरी सब जीव सौं, दादू यह मत सार॥

(दादू)

(फ) यह दुनिया हमारा घर नहीं, हमारा घर ईश्वर के पास है।

२६६--सुन्दर पंछी बिरछ पर, लियो बसेरो आन।
राति रहे दिन उठ गये, तों कुटुम्ब सब जान॥

(सुन्दर)

२६७--दूलम यह परिवार सब, नदी नाव संयोग।
उतरि परे जहं तहं चले, सबै बटाऊ लोग॥

(दूलम)

२६८--मित्रां दोस्त माल धन, छड्डि चले सब भाइ।
संगी न कोई नानका, उह हंस अकेला जाइ॥

(नानक)

(ब) संसार नाशवान हैं। ईश्वर से उदय होता है, उसी में लीन होता है।

२६९--बैद धनंतर मर गया, पलटू अमर न कोय।
सुर-नर-मुनि जोगी जती, सबै काल बस होय॥

(पलटू)

२७०--झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबीना काल का, कछु मुख में कुछ गोद॥
२७१--चलती चाकी देख के, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबित रहा न कोय॥

२७२—माली आवत देख के, कलियां करें पुकार।
फूली फूली चुन लिये, कालि हमारी बार॥
२७३—तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्राण सों बंध रहा, यह न हैं अपना होय॥
२७४—सागर मांह लहर उठत है, गिनती गिनी न जाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, उदधी मांहिं गमाई॥
(कबीर)

२७५—बटक बीज जैसा आकार। पसरयो तीन लोक पासार॥
जहांक उपजा तहा बिलाई। सहज सुन्न में रहो लुकाई॥
(रैदास)

(म) जागो, जीते जी मरकर मौत को जीत लो।
२७६—जागो रे जिन जागना, अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागो नानका, अब सोवउ पांव पसारि॥
(नानक)

२७७—दरिया सोता सकल जग, जागत नाहीं कोय।
जागे में फिर जागना, जागा कहिये सोय॥
(दरया)

२७८—निजहकपहिवानु,हकीकत चानु, नछोड़ इमान,दुनीघरना।
पग पीर गहो,पर पीर हरो,जीवन ना कछु,हक है मरना॥
(धरणी)

२७९—दादू स्वप्नैं सूता प्राणियां, कीयो भोग बिलास।
जागत झूठा ह्वै गया ताकी कैसी आस॥
२८०—जे नाहीं सो देखियो, सूता स्वप्नै माहिं।
दादू झूठा ह्वै गया, जागै तै कछु नाहिं॥
२८१—जीवन माटी हो रहो, साईं सम्मुख होय।
दादू पहले मर रहो, पाछे मरै सब कोय॥

(दादू)

२८२—मरते मरते जग मुवा, मरण न जानै कोय।
ऐसा व्है के ना मुवा, जो बहुरि न मरना होय॥
(कबीर)

२८३—जल में जैसे तूंबा तरे। परिचै पिंड जीव नहिं मरै।
(रैदास)

(म) ईश्वर का प्रसाद।

२८४—मो सम दीन न दीन-हित, तुम समान रघुवीर।
अस विचार रघुवंशमणि, हरहु विषम भव-पीर॥
(तुलसी)

दूसरा भाग (आ)

(तुलसीकृत रामायण से अवतरण—आचरण शुद्धि तथा ईश्वर भक्ति विषय)

१—ईश्वर भक्तों का साथ देता है, यह श्रीराम का वचन है।

सन्त चरण पंकज अति प्रेमा। मनक्रमवचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मो कहं जानै दृढ़ सेवा॥
मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद् गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दम्भ न जाके। तात निरन्तर वश मैं ताके॥

बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करैं निष्काम।
तिनके हृदय-कमल में, करौं सदा विश्राम॥

२—अभिमान करना ईश्वर को पसन्द नहीं।

सुनि मुनेश उपदेश हमारा। रामहिं सेवक परम पियारा॥
सुनहुँ राम कर सहज स्वभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ।

बार बार वर मांगौ, हर्ष देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी, भक्ति सदा सतसंग॥

३—ईश्वर प्रेम रूप है। पापियों का उद्धार करता है।

भक्तिहीन गुण सुख सब ऐसे। लवण बिना बहु व्यंजन जैसे॥

भक्तिहीन विरंचि किन होई । सब जीवन सम प्रिय मोहि सोई ॥
भक्तिवन्त अति नीचौ प्राणी । मोही परमप्रिय यह ममवाणी ॥

४—ईश्वर सबका पिता है, सब पुत्रों को प्यार करता है, यह दुर्बल पितृ-भक्त पुत्र उसे विशेष रूप से प्यारा है ।

एक पिता के विपुल कुमारा । होई पृथक गुणशील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता । कोउ धनवन्त शूर कोउ ज्ञाता ॥
कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई । सब पर पितहिं प्रीति सम होई ॥
कोउ पितु भक्ति बचन मनकर्मा । स्वपनेहु जान न दूसर धर्मा ॥
सो प्रिय सुत पितु प्राण समाना, यद्यपि सो सब भांति अयाना ॥
इहि विधि जीव चराचर जेते । त्रिजन देव नर असुर समेते ॥
अखिल विश्व वह मम उपजाया । सब पर मोरि बराबर दाया ॥
तिन महं जो परिहरि मदमाया । भजहिंमोहिंमन बचनअरु काया ॥

पुरुष नपु सक नारि नर जोय चराचर कोय ।
सर्व-भाव भज कपट तजि मोहिं परमप्रिय सोइ ॥

५--राम कृपा ।

निज अनुभव कहौं खगेशा । बिनु हरिभजन न जाहि कलेशा ॥
राम कृपा बिनु सुन खगराई । जानि न जाय राम प्रभुताई ॥
जाने बिनु न होय परतीति । बिनु परतीति होय नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहि भक्ति दृढ़ाई । जिमि खगेश जल की चिकनाई ॥
बिनु संतोष न काम न साही । काम अछत सुख सपनेहु नाही ॥
राम भजन बिनु मिटहि न कामा । थलविहीनतरु कबहु कि जामा ॥
बिनु अज्ञानकि समताआवै । कोउ अवकाश कि नभ बिनु पावै ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होइे । बिनु महि, गन्ध कि पावै कोई ॥
बिनु तप तेज कि कर विस्तारा । जल बिनु रस की होइ संसारा ।
शील कि मिलु बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेजन रूप गुसाई ॥
निज मुख बिनुमन होइ कि थीरा । परसि कि कोइ विहीनसमीरा ॥

कवनिउ सिद्धिकि बिनु विश्वासा। बिनु हरिभजन न भवभयनासा॥
बिन विश्वास भक्ति नहिं तेहि बिन द्रवहि न राम।
रामकृपा बिनु स्वपनेहु मन कि लहै विश्राम॥

स्वारथ सांच जीव कहं येहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥
मेरे मन प्रभु अस विश्वासा। राम ते अधिक रामकर दासा॥

६—त्याग और ईश्वर-निश्चय द्वारा पापों से मुक्ति होती है।

सुनहु तात अब मानस रोगा। जेहि ते दुख पावत सब लोगा॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजै बहु शूला॥
काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जो तीनों भाई। उपजै सन्निपात दुखदाई॥
विषय मनोरथ दुर्लभ नाना। ते सब शूल नाम को जाना॥
ममता दद्रू, कंड इरषाई। कुष्ट दुष्टता, मन कुटिलाई॥
अहंकार अति दुखद डमरूआ। दंभ कपट मदमान नहरूआ॥
तृष्णा उदर वृद्धि अभिभारी। त्रिविध ईषणा तरुण तिजारी॥
युग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कह लगि कहौं कुरोग अनेका॥
राम कृपा नासहिं सब रोगा। जो इहि भांति बनै संयोगा॥
सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा। संयम यह न विषय कर आसा॥
रघुपति भक्ति सजीवनमूरी। अनुपान श्रद्धा अति रूरी॥
इहि विधि भले कुरोग नसाहीं। नाहित यत्न कोटि नहिं जाहीं॥
अन्धकार वरु रविहि नशावै। राम विमुख सुख जीव न पावै॥

७—नवधा भक्ति।

नवधा भक्ति कहौं तेहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भक्ति संतन करि संगा। दूसरि रतिमय कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान।
चौथि भक्ति मम गुण गण करै कपट तजि गान॥

मंत्र जाप गम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ॥
छट दम शील विरति वहु कर्मा। निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ॥
सप्रम सब मोहि मय जग देखै । मोते संत अधिक कर देखै ॥
अष्टम यथालाभ सन्तोषा । सपनेहुँ नहिं देखै परदोषा ॥
नयम सरल बर्मों छलहीना । मम भरोस जिये होय न दीना ॥

दूसरा भाग (इ)

(जातीय पुत्रियों से कथन, फूलमाला)

रविशे ख़ाम पे मर्दों की न जाना हरगिज़ ।
दाग़ तालीम में अपनी न लगाना हरगिज ।।१।।
नाम रक्खा है नुमाइश का तरक्क़ी व रिफ़ौर्म ।
तुम इस अन्दाज़ के धोके में न आना हरगिज़ ।।२।।
रंग है जिनमें मगर बूए, वफ़ा कुछ भी नहीं ।
ऐसे फूलों से न घर अपना सजाना हरगिज़ ।।३।।
नक्ल यौरुप की मुनासिब है मगर याद रहे ।
ख़ाक़ में गैरते कौमी न मिलाना हरगिज़ ।।४।।
खुद जो करते हैं ज़माने की रविश को बदनाम ।
साथ देता नहीं ऐसों का जमाना हरगिज़ ।।५।।
खुदपरस्ती को लक़ब देते हैं आज़ादी का ।
ऐसे इख़लाक़ पे इमान न लाना हरगिज़ ।।६।।
रंगों-रौग़न तुम्हें यौरुप का मुबारिक लेकिन ।
क़ौम का नक्शा न चेहरे से मिटाना हरगिज़ ।।७।।
जो बनाते हैं नुमाइश का खिलौना तुमको ।
उनकी ख़ातिर से यह ज़िल्लत न उठाना हरगिज़ ।।८।।
रुख से पर्दे को हटाया तो बहुत खूब किया ।
पर्दए शर्म को दिल से न उठाना हरगिज़ ।।९।।
तुमको कुदरत ने जो बख्शा है हया का जेवर ।
मोल इसका नहीं कारूं का खज़ाना हरगिज़ ।।१०।।
पूजने के लिए मन्दिर जो है आज़ादी का ।
इसको तफ़रीह का मरकज़ न बनाना हरगिज ।।११।।

नक़्दे इख़्लाक़ को हम नल की तरह हार चुके ।
तुम हो दमयन्ति यह दौलत न लुटाना हरगिज़ ॥१२॥

ख़ाक में दफ़्न हैं मज़हब के पुराने पाखंड ।
तुम यह सोते हुए फ़ितने न जगाना हरगिज़ ॥१३॥

अपने बच्चों की खबर क़ौम के मर्दों को नहीं ।
ये हैं मासूम इन्हें भूल न जाना हरगिज़ ॥१४॥

इनकी तालीम का मकतब है तुम्हारा ज़ानू ।
पास मर्दों के नहीं इनका ठिकाना हरगिज़ ॥१५॥

काग़ज़ी फूल विलायत के दिखाकर इनको ।
देश के बाग़ से नफ़रत न दिलाना हरगिज़ ॥१६॥

नग़मए क़ौम की लै जिसमें समा ही न सके ।
राग ऐसा कोई इनको न सिखाना हरगिज ॥१७॥

परवरिश क़ौम की दामन में तुम्हारे होगी ।
याद इस फ़र्ज की दिल से न भुलाना हरगिज़ ॥१८॥

जो बुजुरगों में तुम्हारे न हो इस वक्त का रंग ।
इन ज़ईफों को न हंस हंस के रुलाना हरगिज ॥१९॥

होगा परलय जो गिरा आंख से इनके आंसू ।
बचपने से न यह तूफ़ान उठाना हरगिज़ ॥२०॥

हम तुम्हें भूल गये उसकी सजा पाते हैं ।
तुम ज़रा अपने तईं भूल न जाना हरगिज़ ॥२१॥

किसके दिल में है वफ़ा किसकी ज़बां में तासीर ।
न सुना है न सुनोगी यह फ़िसाना हरगिज ॥२२॥

(पंडित ब्रजनारायण चकबस्त, लखनऊ)

तीसरा भाग

[विविध]

१—(क) ईश्वर से प्यार करने से पहले मनुष्य से प्यार करो ॥

हरि से जनि तू हेत कर, कर हरिजन से हेत ।
माल-मुलक हरि देत है, हरिजन हरि ही देत ॥

(कबीर)

२—बिसरि गई सब तात पराई, जब तें साध संगत मैं पाई ।
ना कोई बैरी नांहि बेगाना, सकलसंग हमरी बनि आई ॥
जो प्रभु कीन्हो सो भल मान्यो, एहि सुमति साधु ते पाई ।
सब मह रम रहिया प्रभु एकहि, पेखि पेखि नानक बिगसाई ॥

(नानक)

३—ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत ।
सत्यवान् परस्वारथी, आदर-भाव सहेत ॥

(कबीर)

(ख)—साधु लक्षण

४—'दरिया' लच्छन साधु का, क्या गिरही क्या भेख ।
निष्कपटी निरपच्छ रहि, बाहर-भीतर एक ॥

(दरिया)

५—सोई साधु सिरोमनी गोविन्द गुन गावै ।
राम भजै, विषया तजै, आपा निज नावै ॥
मिथ्या मुख बोलै नहीं, परनिन्दा नाही ।
औगुन छाड़ै गुन गहै मन हरिपद माही ॥

निर्बैरो सब आत्मा पर आतम जानै।
सुखदायी समता गहै आपा नहिं आनै॥
आपा-पर-अन्तर नहीं, निर्मलनिज सारा।
सतवादी सांचा कहै, लौलीन विचारा॥
निर्भय भज न्यारा रहै, काहू लिपत न होय।
दादू सब संसार में, ऐसा हो जन कोय॥

(दादू)

(ग)—समदृष्टि

६—ज्यों आपै देखै आपको, यों जे दूसर होइ।
तो दादू दूसर नहीं, दु:ख न पावे कोइ॥

(दादू)

(घ)—दया

७—मक्का मदिना द्वारका, बद्री औ केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार॥

(मलूक)

८—दया धरम हिरदै बसै, बोलै अमरत बैन।
तेई ऊंचे जानिये, जिनके नीचे नैन॥

(मलूक)

६—पीर सबन की एक सी मूरख जानत नाहिं।
कांटा चूभे पीर है, गला काटि को खाहिं?

(मलूक)

१०—आपन को मारै नही, पर को मारन जाई।
दादू आपा मारै बिना, कैसे मिलै खुदाई॥

(दादू)

(च)—एकता

११—सब हम देखा सोधि कें, दूजा नाहीं आन।
सब की एकहि आतमा, क्या हिन्दू मूसलमान॥

(दादू)

१२—जबलग ऊंच नीच कर जाना।
ते पसुवा भूले भ्रम नाना॥

(कबीर)

१३—सब घट मेरा साइयां सूनी सेज न कोइ।
वा घट की बलिहारियां जा घट परघट होइ॥

(कीर)

१४—पेमी हिन्दू तुरक में हर-रंग रहो समाय।
देवल और मसीत में दीप एक ही भाय॥

(बरकत उल्लाह पेमी)

१५—कैसे हिन्दू तुरक कहाया, सब ही एकै द्वारे आया।
एकै कुल एकै परिवारा, ब्रह्म बीज का सकल पसारा॥

(गरीबदास)

(छ)—विरह

१६—चख जोगी कथा करै, अरुन साम औ सेत।
आंसु बूंद सुमरन लईं दरसन मिच्छा हेत॥

(पेमी)

१७—तुम सूरज हम दीप निस, अजुगत कहै सुनाय।
बिन देखें नहिं रह सकौं, देखे रहो न जाय॥

(पेमी)

१८—लालन की जहं सेज है, दुर्जन तहां करेर।
मिलिहैं कैसे ए सखी, दीपक तरे अंधेर॥

(पेमी)

१९—बैकुंठा है संतन को, नरक असत्तै जांह।
हमको मोहन चाहियें, मिलें जो भरभर बांह॥

(पेमी)

२०—मिलबो नित बैकुंठ है बिछुरन नरक समान।
बेग मिलो मन भाव तें, जनि बिछुरो जियजान॥

(पेमी)

(ज) प्रेम द्वारा मृत्यु पर विजय ।

२१—जम जनि बोरा होय तूं डौरत घेरत आन ।
　　हम तो तब ही दे चुके प्राणनाथ को प्रान ॥

(पेमी)

२२—प्रेम पंथ जी दीजिये, जम लेहिए यह पौन ।
　　बौरे मन तू न्याव कर, दुह में नीको कौन ॥

(पेमी)

२३—हरिजन हरि के पथ जिय ऐसे देत मिलोय ।
　　निधरक लोभै छाड़ि के जम सुध ही ना होय ॥

(पेमी)

(झ)—ईश्वरभक्ति के आधार पर भारतवर्ष के निवासियों का किस प्रकार चरित्र संगठन होना चाहिए ।

२४—वैष्णवजन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे ।
　　पर दुःखे उपकार करे तो पे अभिमान न आणे रे ॥
　　सकल लोक मा सहुने बन्दे निन्दा न करे केनी रे ।
　　बाच काछ मन निश्चल राखे धन-धन जननी तेनी रे ॥
　　समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी परस्त्री जेने मात रे ।
　　जिह्वा थाकी असत्य न बोले पर धन नै झले हाथ रे ॥
　　मोह माया व्यापे नहिं जेने दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे ।
　　राम नाम सुंताली लागी सकल तीरथ तेना मनमां रे ॥
　　वण लोभी ने कपट रहित छे काम क्रोध निवार्या रे ।
　　भर मै नरसैं यो तेनुं दरशन करतां कुल एको तेर तार्या रे ॥
　　भू भरतखंड भूतल मां जननी जणे गोविन्द गुण गाता रे ।
　　धन धन रे एना मात पिता ने सफल करी एणे काया रे ॥

(नरसी—गुजरात १६ वीं शताब्दि)

२५—(ईश्वर-कृपा)

मूक होंइ वाचालु, पंगु चढ़इ गिरवर गहन।
जासु कृपा सो दयालु द्रवउ सकल कलिमल दहन॥

(तुलसीदास)

२६—(कर्म)

करम प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा॥

(तुलसी)

२७—(विधि की प्रधानता)

राम कीन्ह चाहहि सोइ होई।
करइ अन्यथा अस नहिं कोई॥
होइ है सोइ जो राम रच राखा।
को कर तरक बढ़ावहि साखा॥

(तुलसी)

२८—(अछूतों से प्रेम)

सब भांति अधम निषाद सो हरि भक्त जों उर लाइयो।
मति मन्द तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥

(तुलसी)

२९—(रामायण से निषाद)

कपटी कायर कुमति कुजाती।
लोक वेद बहिर सब भांती।
राम कीन्ह आपन जब होते।
भयउ भुपन भूषन तप ही ते॥

(तुलसी)

३०—(शरणागत को अभयदान)

सरनागत कहं जे तजहिं, निज अनहित अनुमान।
ते नर पांवर पापमय, तिन्हहि विलीकत हान॥

(तुलसी)

(श्रीराम का वचन)

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

(तुलसी)

३१—(भजन से कुशलता)

तब लगि कुशल न जीव कहुं, सपनेहुं मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुं, सोक धाम तजि काम॥

(तुलसी)

३२—(ईश्वर की सहायता से पाप का नाश)

ममता तरुन तमी अंधियारी।
राग-द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लग बसत जीव मन मांहीं।
जब लग प्रभु प्रताप रवि नाहीं॥

(तुलसी)

३३—(ईश्वर पापियों का उद्धार करने वाला है)

(रामायण में विभीषण —)

मैं निसिचर अति अधम सुभाउ।
सुभ आचरन कीन्ह नहिं काउ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा।
ते प्रभु हरषि हृदय मोहि लावा॥

(श्रीराम का वचन)

जौं नर होइ चराचर द्रोही।
आवइ समय सरन तक मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना।
करउं सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बन्धु सुत दारा।
तनु धन भवन सुहृद परिवारा॥

सबके ममता त्याग बटोरी।
ममपद मनहिं बांध वरि डोरी॥
समदर्शी इच्छा कछु नाहीं।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे।
लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥

२४–(दृढ़ निश्चय)

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥
जो इच्छा करिहैउ मन माहीं।
हरि-प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥ (तुलसी

(हनूमान जी का शरणागति भाव)

तव माया बस फिरउं भुलाना।
ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना।
एकमंद मैं मोहबस, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि विसारिऊ, दीनबंधु भगवान॥
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे।
सेवक प्रभुहिं परइ जनि भोरे॥
नाथ जीव तव माया मोहा।
सो निस्तरइ तुम्हारे छोहा॥
तापर मैं रघुबीर दुहाई।
जानउं नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे।
रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे॥
ताकह प्रभु कुछ अगम नहिं, जापर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभाव बड़वानलहि, जारि सकइ खल तूल॥

(तुलसीदास)

३५–(मित्रता)

जे न मित्रदुख होहिं दुखारी।
तिन्हहिं विलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरिसम रज कर जाना।
मित्र के दुखरज मेरु समाना॥

(तुलसी)

३६–(भजन)

देह धरे का यह फल भाई।
भजिय राम सब काम बिहाई॥

(तुलसी)

३७–(परोपकार)

परहित बस जिनके मन माहीं।
तिन कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(ईश्वर कृपा)

कोमलचित्त अति दीनदयाला
कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥

(तुलसी)

३८–(जटायु का आत्मत्याग)

गीध अधम खग आमिष भोगी।
गति दीन्हीं जो जांचत जोगी॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी।
हरि तजि होहिं विषय अनुरागी॥
राम काज कारन तनु त्यागी।
हरिपुर गयेउ परम बड़ भागी॥

(तुलसी)

३९–(नाम-स्मरण)

स्वपच सवर खस जनम जड़, पांवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भवन विख्यात॥

पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं।
अति अपार भवसागर तरहीं ॥
वेद पुराण जासु जस गावा।
राम-विमुख सुख काहु न पावा ॥
मिलहिं न रघुपति बिन अनुरागा।
किए जोग जप ज्ञान विरागा ॥
वारि मथे घृत होइ वरु, सिकता ते वरु तेल।
बिन हरि भजन न भव तरहिं, यह सिद्धान्त अपेल ॥
भगति हीन गुन सब सुख कैसे।
लवन बिना बहु व्यंजन जैसे ॥

(तुलसी)

४०—(प्रेम की शक्ति)

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना ॥

(तुलसी)

भगति हीन नर सोहइ कैसे।
बिन जल वारिद देखिइ जैसे ॥

(तुलसी)

४१—(भक्ति-पथ और विश्वास)

कहहु भगति-पथ कवन प्रयासा।
योग न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मल कुटिलाई।
यथा-लाभ संतोष सदाई ॥
मोर दास कहाय नर आसा।
करइव कहहु, कहा विश्वासा ॥
(भक्त के लक्षण)
बैर न विग्रह आस न त्रासा।
सुखमय ताहि सब आसा ॥

अनारम्भ अनिकेत अमानी।
अनघ अरोष दच्छ विज्ञानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा॥
तृन-सम विषय स्वर्ग अपवर्गा॥
भगतिच्छ, हठ नहिं सठताई।
दुष्ट तर्क-सब दूर बहाई॥

(तुलसी)

४२—(भारत और भारतवासी धन्य हैं)

धन्य सुदेस जहां सुरसरी।
धन्य नारि पतिवृत अनुसरी॥
धन्य सो भूप नीति जो करई।
धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥
सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सु पुनीत।
श्री रघुवीर परायन, जेहि नर उपज विनीत॥

(तुलसी)

४३—(हरिभजन)

राकापति षोड़स उगहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरन्ह दव लाइय, बिनु रविरात न जाइ॥
ऐके ही बिनु हरि-भजन खगेसा।
मिटहि न जीवन्हकेर कलेसा॥
हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या।
प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या॥

(तुलसी)

भगत कल्प-तरु, अनत हित, कृपासिंधु, सुखधाम।
सोइ निज भक्ति मोहि प्रभु देह, दया कर राम॥

(तुलसी)

४४—(मनुष्य जन्म की सफलता)

बड़े भाग मानुष तन पावा।
पुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा॥
पाइन जेह परलोक संवारा॥

४५—(सत्संग)

बिनु सत्संग न हरिकथा, तेहि बिन मोह न भाग।
मोहि गये बिन राम पद, होय न दृढ़ अनुराग॥
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा।
केहि न सुसंग बड़प्पन पावा॥

(तुलसी)

४६—(सत-लक्षण, श्रीराम जी कहते हैं—)

षट-विकार-जित, अनघ अकामा।
अचल अकिंचन शुचि सुखधामा॥
अमित-बोध, अनीह, मित-भोगी।
सत्त संघ, कवि कोविद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना।
धीर भक्ति-पथ परम प्रवीना॥
गुणागार, संसार-दुख रहित, विगत-संदेह।
तज मम चरण सरोज प्रिय जिन कहं देह न गेह॥
निज गुण श्रवण सुनत सकुचाहीं।
परगुन सुनत अधिक हर्षाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती।
सरल सुभाव सबहिं सन प्रीती॥

जप तप व्रत दम संयम नेमा।
गुरु गोबिन्द विप्रपद प्रेमा॥
श्रद्धा क्षमा मैत्री दाया।
मुदिता, ममपद प्रीति अमाया॥
विरत, विवेक विनय विज्ञाना।
बोध यथारथ वेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊं।
भूलि न देहिं कुमारग पाऊं॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला।
हेतु रहित हरहित रत सीला॥
संत असंतन्ह के असि करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥
काटई परसु मलय सुनु भाई।
निजगुन देह सुगंध बसाई॥

(तुलसी)

४७—(सुख के साधन)

बिन संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।
थल विहीन तरु कबहुं कि जामा॥
बिनु विज्ञान कि समता आवइ।
को अवकाश कि नभ बिनु पावइ॥
श्रद्धा बिना धरम नाहिं होइ।
बिनु माहि गंधकि पावइ कोइ॥
बिनु तप तेज कि कर विस्तारा।
जलबिनु रस कि होइ संसारा॥

सील कि मिल बिनु बुध-सेवकाई।
जिमि बिनु तेज न रूप गुसांई॥
निज सुख बिनु मन होइ की धीरा।
परसि कि होइ बिहीन समीरा॥
कबनिउं सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।
बिनु हरि भजन न भव-भय नासा॥
बिनु विश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहि न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह विश्राम॥
अस बिचार मति-धीर, तज कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुवीर, करुनाकर सुखद॥
कबहुं कि दुख, सब कर हित ताके।
तेहि कि दरिद्र, परस मनि जाके॥
पर द्रोही कि होइ निसंका।
कामी पुनि कि रहहि अकलंका॥
काहू सुमति कि खल संग जानी।
सुभ गति पाव कि पर त्रिया गामी॥
भव कि परहिं परमातम विंदक।
सुखी कि होहिं कबहुं पर-निन्दक॥
राजकि रहइ नीति बिनु जामे।
अघ कि रहइ हरि चरित बखाने॥
पावन जस कि पुराय बिन होई।
बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥
लाभ कि कछु हर भगति समाना।
जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥
हानि कि जग एहि सम कछु भाई।
भजै न रामहिं नर तनु पाई॥

अघ कि पिसुन तामस कछु आना।
धर्म कि दया सुरिस हरिजाना॥

(तुलसी)

४८—(अहिंसा)

संत उदय सतत हितकारी।
विस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा।
पर-दिन्दा सम अब न गिरीसा॥

(तुलसी)

४९—(ईश्वर-भक्ति)

फूलहिं नभ वरु बहु विधि फूला।
जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥
अन्धकार वरु ससिहि न सावहिं।
राम विमुख न जीव सुख पावहिं॥
हिमते अनल प्रगट वरु होई।
विमुख राम सुख पाव न कोई॥

५०—(ज्ञान)

सपने होइ भिखारी नृप, रंक नाक-पति होय।
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोय॥
अस विचारि न कीजिय रोपू।
काहूहि वादि न देइय दोपू॥
मोह-निशा सब सोवन-हारा।
देखिय सपन अनेक प्रकारा॥
एहि जग-जामिनि जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच-वियोगी॥
जानिए तबहि जीव जम जागा।
जब सब विषय-विलास विरागा॥

होय विवेक, मोह-भ्रम भागा ।
तब रघुनाथ-चरण अनुरागा ।।
साखा परम परमारथ ऐहू ।
मन-क्रम वचन राम-पद नेहू ।।

(तुलसी)

२१–(निर्गुण सगुण में कोई भेद नहीं)

सगुनहि अगुनहिं नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुरान बुधवेदा ।।
अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेमवश सगुन सो होई ।।
जो गुन-रहित सगुन सोइ कैसे ।
जल हिमि उपल विलग नहिं जैसे ।।

(तुलसी)

२२–(जगत)

रजत सीप महुँ भास जिमि तथा भानु कर वारि ।
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ।।
एहि विधि जग हरिआस्रित रहई ।
जदपि असत्य, देत दुख अहई ।।
ज्यों सपने सिर काटइ कोई ।
बिनु जागे न दूर दुख होई ।।
जासु कृपा अस दुख मिटि जाई ।
गिरजा सोइ कृपालु रघुराई ।।
आदि अन्त काउ जासु न पावा ।
मति अनुमान निगम अस गावा ।।

(तुलसी)

५३–(माया)

मैं अरु मोर तोर तै माया।
जेहि बस कीन्हे जीव-निकाया ॥

५४–(जीव)

सुनहु तात यह अकथ कहानी।
समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥
ईश्वर-अंश जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो माया बस भयउ गोसाई।
बंधेउ कीर मरकट की नाई ॥
जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तबतें जीव भयउ संसारी।
छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी ॥
स्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥

५५–(ईश्वर-प्रसाद)

जीव-हृदय तम मोह विसेखी।
ग्रंथि छूटि किमि; परई न देखी ॥
अस संजोग ईस तब करई।
तबहु कदाचित सो निरुवरइ ॥

(तुलसी)

५६–(चेतावनी)

वृथा मरहु जनि गाल बजाई।
मन-मोदक किन्ह भूख बुझाई ॥
डगइ न संभु सरा-सन कैसे।
कामी बचन सती मन जैसे ॥

सब नृप भये जोग उपहासी।
जैसे बिनु बिराग सन्यासी॥

(तुलसी)

५७—(शरणागति)

श्री रघुवीर प्रताप तें, सिन्धु तरे पाषाण।
ते मति-मन्द जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥

(तुलसीदास)

चौथा भाग

गीता दोहावली

(श्रीकृष्ण भगवान का गीता में अर्जुन को उपदेश)

(क)–मृत्यु का शोक मत करो, पुरुष मरता नहीं, आत्मा अमर है।

(श्री भगवानुवाच)

१–शोच अशोची का करत, कहत ज्ञान की बात।
शोच नहीं पंडित करत, जीव न उपजत जात ॥ गीता, २.११

१--हम तुम औ नरपति जिते, इनको नाश न होय
तीन काल में थिर रहें, एसै सबको जोय ॥ २.१२

३–बाल युवा औ वृद्धता जूं देही में होइ।
तैसे देही अंत लहि, धीर न मोहत सोइ ॥ २.१३

४–अर्जुन इन्द्रिय चित्त मिलि, बिषय जु सुखदुख देतु।
आवैं जाइं न थिर रहैं, सह तिनको या हेतु ॥ २.१४

५--जाके विथा न होय कछु, सुख दुख गिने समान।
वही धीर मुक्तिहि लहै, बात यही परमान ॥२.१५

६--जो है सो विनसै नहीं, जो विनसै सो नाहिं।
जो इन तत्वन को लहै गिनिये ज्ञानी ताहि ॥ २.१६

७--जासूं जग यह है भयो, सो अबिनासी जान।
जाहि बिनास न को करै, ताहीं आतम मान ॥ २.१७

८--अन्तवन्त सब देह हैं, जीव रहत है नित्त।
वो अविनासि अचिंत्य है, युद्ध करो किन मित्त ॥ १.१८

९--यह न मरै उपजै नहीं, भये न आगे होय।
अरज पुरातन नित्य है; मारै मरै न सोय ॥ २.२०

१०- जैसे पट जीरण तजैं, पहरत नर जु नवीन ।
देह पुरानी जीव तजि, नई गहत परवीन ।। २.२२

११-यह न कटै हथियार सूं, पावक सकै न जार।
जल में घोलि न हो सकै. शोष सकै न बयार ।। २.२३

१२--कटै जरै सूखै नहीं, और न भीजत योग !
नित्य रहै सब ठौर थिर, अविनासी बिन रोग ।। २.२४

१३-प्रकट नहीं जु अचिन्त है, अविकारी तू जान ।
ऐसें वाको जानि कै, शोक लेहु मत मान ।। २.२५

१४--जो तू जानत जीव को, जन्म-मरण पुनि होइ ।
तऊ शोक तू मत करै, मन दृढ़ता में गोइ ।। २.२६

१५--जो उपजे सो विनसि है, मरै जु उपजै आइ ।
होनहार सो होत है, तहां न शोच बढ़ाइ ।। २.२७

१६-पाछी जाहि न जानई, आगे परै न जान ।
मांझहि में कछु देखई, ताको सोच न मान ।। २.२८

१७--जो याको देखै कहै, अचरज में पड़ जाय ।
सुनै अचंभा सा लगै, सुनै न जानो जाय ।। २.२९

१८--जीव न मारो जात है, देह सुं न्यारो जोह ।
तातैं सोंच न कीजिए, कर काहू से मोह ।। २.३०

[ख]--कर्तव्य का पालन करो ।

१९--तू अधिकारी कर्म में, फल में रखै न हेत ।
कर्मन के फल छांड़िकै, स्व-कर्म ही गहिं लेत ।। २.४७

२०-योगस्थित हो कर्म कर, फल के संग को त्याग ।
सिद्धि असिद्ध समान गिन, यही योग-अनुराग ।। २.४८

२१--चाहत नहिं जे कर्म-फल, ते पंडित बड़भाग ।
कर्मबन्ध को छांड़ि के, लहत मुक्ति-अनुराग ।। २.५१

२२-मोह सयानप जब तजै, अर्जुन तेरी बुद्धि ।
तब पावै बैराग को; चित में करके शुद्धि ।। २.५२

२३—तेरी बुधि बैराग में, थिर रहिए जब मित्त।
तब समाधि में जोग लहि, निश्चल होवे चित ॥२.५३

(ग)—निश्चल-बुद्धि के लक्षण।

(अर्जुन उवाच)

२४—जो हो निश्चल-बुधि नर, ताको कैसे चिन्ह।
कैसे रहि बोलै चलै, कहिये सगरे चिन्ह ॥ २.५४

(श्री भगवानुवाच)

२५–हैं मन में जो कामना, तिनको तजै जु कोइ।
आतम सू सन्तोष गहि, निश्चल-बुद्धि होइ ॥ २.५५

२६–दुख को तजि भाजै नहीं, सुख चाहै नहिं चित्त।
तजै मोह औ क्रोध भय, निश्चल-बुद्धि सो मित्त ॥ २.५६

२७—मोह न काहू से करे, नहिं विषयन की चाह।
भले बुरे से काम नहीं, थिर-बुधि जाने ताह ॥ २.५७

२८—ज्यों कछुआ निज अंग को, खेंच आप में लेत।
तैसे खेंचे इन्द्रियन, तजि विषयन सो हेत ॥ २.५८

२९—तजने तें आहार के, विषय जु हैं भज जात।
अभिलाषा पुनि भजत है, आतम देखै तात ॥२.६६

३०—ज्ञान-वन्त जो पुरुष हैं, जतन कठिनता साधि।
इन्द्री अति बलवन्त है, तऊ लगावत व्याधि ॥२६०

३१—तातैं रोके इन्द्रियन, मो में चित को लाइ।
बस कीनी जिन इन्द्रियां, सो थिर-बुद्धि सुभाइ २.६१

३२—जब ध्यावत है विषम को, तब उपजे है संग।
संग ते उपजत काम है, काम से क्रोध अभंग ॥ २.६२

३३—क्रोध से उपजत मोह है, मोह से स्मृति का भंग।
स्मृति जु नसै, बुद्धि नसै, बुधि-नसत सब भंग ॥ २.६३

३४—रागद्वेष कु छांड़ि कर, लहै विषय की सेव।
इन्द्री जो निज वस करै, गहै शान्ति को मेव ॥ २.६४

३५—शांति जबै ये गहत है, होत दुःख की हान।
थिर-बुद्धि तब होत है, तुम लीजो इहि मान ॥ २.६५

३६—योग बिना बुद्धि हु नहीं, बुद्धि बिना नहीं ध्यान।
ध्यान बिना संतोष नहीं, ता बिन सुख न सुजान ॥२.६६

३७—इन्द्रिय जित जित फिरत हैं, तित मन लावत खेंच।
मन जु बुद्धि हर लेत है, वायु नाच ज्यों एंच ॥२.६७

३८—जिन इन्द्रिय रोकी सबैं, ठौर-ठौर ते आनि।
विषय त्याग जा ने कियो, थिर-बुधि ताही मानि ॥२.६८

३९—जहं जागत है संजमी, तहं भूतन की रात।
जहां भूत जागत सबै, सो मुनि की निसि भांत ॥२.६९

४०—जैसे जल सब सरित का, मिलत सिंधु में जाइ।
त्यों समाइं सब कामना, शांति रहें तहं आइ ॥२.७०

४१—तज के सब मन कामना, जो निस्प्रेही होय।
ममता तजि हंकार तजि, शांति लहत है सोय ॥२.७१

४२—ब्रह्म-ज्ञान तो सों कह्यो, जातें मोह नसाइ।
सो बुधि अन्त समै रहै, मिलै ब्रह्म सूं जाइ ॥२.७२

(घ)—यज्ञ की भावना को त्याग कर अर्थात दूसरों के हित को भुला कर स्वार्थ-चिन्तन करना पाप है। पाप का मूल काम है।

४३—यज्ञ सहित जो खात हैं, पाप न लहि हैं सोइ।
अपने हितकर यज्ञ-बिन, खाइं सु पापी होइ ॥३.१३

४४—बड़े जु आचारहिं करै सोई मद में आनि।
ताहि मग सब जग चलै, बड़े जु कीन प्रमानि ॥३.२१

(अर्जुन उवाच)

४५—कह्यो प्रेरे कौन के, पुरुष करत हैं पाप।
अपनी इच्छा के बिना, बिर जोरी से आप ॥३.३६

(श्री भगवानुवाच)

४६—ए जो काम उ क्रोध है, रजोगुणहिं ते होइ।
कबहूं तिरपत होत नहिं, या बिन बैरि न कोइ ॥३.३७

४७—ज्ञानी हू को ज्ञान इन, बैरी राख्यो झांपि।
काम दुसह यह अगन है, सकै न कोऊ ढांपि ॥३.३६

४८—इन्द्रिय मन और बुद्धि हैं, येई जाके थान।
इन करि सो नासत जु है, ज्ञानी हू को ज्ञान ॥३.४०

४६—अर्जुन ताते आदि ही, तू इन्द्रियन को रोक।
हरत ज्ञान विज्ञान जो, ता पापी को ठोक ॥३.४१

५०—इन्द्री हैं सब ते परै, ताते पर मन जोइ।
मन ते परे जु बुद्धि है, ताते, आतम होइ ॥३.४२

५१—आतम लखि बुधि ते परे, मन को कर बस मांइ।
काम रूप अरि दुष्ट को, मार डारि बस भाइ ॥३.४३

(च)—श्रद्धा से बल प्राप्त करो और संशय को दूर करो।

(श्री भगवानुवाच)

५२—जो मोकू जैसे भजे, तैसे हूं फल देत।
अर्जुन नर सब जगत में, मेरो ही मग लेत ॥४.११

५३—यथा-लाभ संतोष जो, सुख-दुख लखे न दोय।
सिद्धि असिद्ध जु एक सी, कर्म न बन्धन न होय ॥४,२२

५४—ज्ञान समान न लोक में, पवित्र है कछु और।
योग-साधना जो करे, लहै ज्ञान की ठौर ॥४.३८

५५—श्रद्धावान जु इन्द्रजित, पावत है सो ज्ञान।
ता पावै तत्काल ही, सुख निधि शान्ति सुजान ॥४.३६

५६—जो मूरख श्रद्धा बिना, होवे ताको नास।
जाके हिय संशय बसे, दोनों लोक निरास ॥४.४०

५७—मोको अर्चै कर्म करि, संशय को करि दूर।
ज्ञानी बंधे न कर्म सूं, रहै सदा सुखपूर ॥४.४१

५८—संदेह जु अज्ञान ते, उपजे अर्जुन आहि।
ज्ञान खड्ग सूं काटि के, उठ, कर योग हु ताहि ॥४.४२

(छ)—समता-दृष्टि को ग्रहण करो।

५९—विद्या विनय शील द्विज, गो गज स्वपचो स्वान।
ज्ञानी इनको सम गिनत, भेद लेत नहिं मान ॥५.१८
६०—समता जिनके हीय में, तिन जीतो संसार।
समता ब्रह्महिं को कहत, ब्रह्मलीन निरधार ॥५.१९
६१—सुख पाये हर्ष नहीं, दुख पाये न रिसाइ।
राखे थिर निज बुद्धि को, ब्रह्महि रहै समाइ ॥५.२०
६२—बाहर के सुख को तजै, आतम सुख ले जान।
ब्रह्म विषै चित को धरै, रहै जू आनन्द मान ॥५.२१
६३—विषय जिते संसार के, ते हैं विष के मूल।
उपजत विनसत हैं तिन्हैं, पंडित गहत न भूल ॥५.२२
६४—काम क्रोध के वेग को, जीत सकैं जो भाइ।
ते योगी नित ही रहैं, थिर-सुख ही लिपटाइ ॥५.२३
६५—जाके हिय परकास है, अंतर सुख आराम।
वह योगी परब्रह्म है, लहै ब्रह्म को धाम ॥५.२४
६६—काम क्रोध को त्यागि के, बस कीनो निज चित्त।
ऐसे ज्ञानी पुरुष के, ब्रह्म चहूं दिस मित्त ॥५.२६

(ज)—आतम-विजय ही परम विजय है।

६७—आतम का उद्धार कर, आतम को मत खोय।
आतम ही रिपु आपना, आतम बन्धू होय ॥६.५
६८—आप ही जीति आतमा, आतम बन्धू सोय।
जिन जीते नहिं आतमा, आतम शत्रू होय ॥६.६
६९—जिन जीतो है आतमा, शान्ति लहो चित धाम।
मान तथा अपमान में, सुख दुख सीत उ घाम ॥६.७

७०—तृप्त जु ज्ञान विज्ञान सों, थिर जित-इन्द्रिय होय ।
माटी सोना एक सम, गिनै सो योगी होय ॥६.८

७१—मित्र उदासी शत्रु पुनि, बन्धु अबन्धु समान ।
साध उ पापी सब जनै, गिनै एक अनुमान ॥६.६

७२—युक्त-अहार बिहार जो, कर्मयुक्त पुनि होय ।
जागत सोवत जुगत सों, योग तिनै दुख धोय ॥६.१७

७३—जब निज चित का वस करै, राखै आतम मांहि ।
तजै सबै जो कामना, सो योगी नरनाहि ॥६.१८

७४—जैसे दीप समीर बिन, रहै जोति ठहराय ।
योगी निश्चल चित्त को, उपजाये इह भाइ ॥६.१६

७५—मन चंचल जित जित चलै, याको राखै रोकि ।
करि संजम निज आतमा, सजै जु ताको ठोकि ॥६.२६

७६—जाके मन में शांति है, पाप रहित जो होइ ।
मगन जु ब्रह्मानन्द में, उत्तम सुख ता होइ ॥६.२७

७७—आतम को सब में लखे, सबको आतम माहिं ।
योग-युक्त ऐसे लखै, समदर्शी सब माहिं ॥६.२६

७८—जो मोको सब में लखे, सबको मोही मांहि ।
वह मुझ से बिछड़े नहीं, मैं नहीं बिछड़ूं ताहि ॥६.३०

७६—सबको देखै आप सम, सुख दुख एके भाइ ।
सो योगी सब से बड़ो, मो में रहै समाइ ॥६.३२

(अर्जुन उवाच)

८०—मन चंचल है कृष्णजी, बहु छोभक बलवान ।
पवन कुं रोकि जु रोकि मन, अति दुष्कर यह मान ॥६.३४

(श्री भगवानुवाच)

८१—अर्जुन तुम सांची कहो, मन चंचल न गहाइ ।
योग किये वैराग सू, नीकैं पकरो जाइ ॥६.३५

८२—जिन पकरो नहिं चित्त निज, तापैं योग न होइ।
जिन अपनो मन बस कियो, लहत जतन सूं सोइ ॥६.३६

८३—जो योगी मन राखि हैं, मों में निश्चल भाइ।
श्रद्धायुत मोकों भजें, सब तैं सो अधिकाइ ॥६.४७

(झ)—ज्ञान-योग

(श्री भगवानुवाच)

८४—अर्जुन मोते नहिं परे, कोइ तत्व यह जान।
मनियां जैसे सूत में, त्यों जगत मोहि मान ॥७.७

८५—मेरी माया गुणमयी, दुस्तर तरी न जाय।
आये कोऊ मो शरण, निश्चय ही तर जाय ॥७.१४

८६—पुण्य करैं जो जगत में, दूर किये जिन पाप।
दुई-मोह को छांड़ि कर, मोको पावत आप ॥७.२८

(ट)—ईश्वरार्पण-बुद्धि को धारण करो

८७—मेरो सुमरण नित्य करि, युद्ध करै किन भित्त।
अर्पै मोमे बुद्धि मन, मोको पावे नित्त ॥८.७

८८—भक्ति करे ते पाइये, परम पुरुष सो जान।
जामें सगरे जीव हैं, जग विस्तारो आन ॥८.२२

८९—वेद यज्ञ तपदान को, फल जु कहो है मित्त।
योगी ता फल को तजै, परपद चीनै चित्त ॥८.२८

(ठ)—ईश्वर को हर काम में साक्षी जानो, वही मनुष्य का बन्धु और हितकारी है। उसी का भजन करो। वोही बेड़ा पार करने वाला है।

(श्री भगवानुवाच)

९०—जैसे पवन अकास में, चलत फिरत सब बार।
त्यौं मोमे सब जीव यह, फिरत रहत निरधार ॥९.६

९१—मात पिता या जगत को, मैं हूं भरतार।
ऋग यजु साम पवित्र हूं. और वेद ओंकार ॥९.१७

९२–गति निवास भर्ता शरण, साक्षी प्रभु अरुबंधु।
प्रलय-स्थान निधान हूं, प्रभव बीज सद्बंधु॥ ९.१८
९३–तपत गहत छोड़त जु हूं, बरषत मोही जान।
जिवन मरण कारण करण, अर्जुन मोही मान॥ ९.१९
९४–भक्ति करें जु अनन्य ही, मोही में चित राखि।
योग-क्षेम तिनको करूं, निज जन को अभिलाखि॥ ९.२२
९५–अन्य-देव के भक्त जे, सेवत श्रद्धावत।
मानू मोको भजत हैं, विधि छोड़े विधिवंत॥९.२३
९६–पत्र-पुष्प फल नीर को, जो अर्पै करि प्रीति।
लेऊं ताकी भक्ति को, यही प्रेम की रीति॥ ९.२६
९७–जो कुछ करत जु खात हैं, जो होमत जो देत।
अर्जुन जो कुछ तप करत, अर्पन कर मुझ हेत॥९.२७
९८–मैं सब ठौर समान हूं, प्रीत न मेरे द्रोह।
मेरे जो निज भक्त हैं, मैं तिन में ते मोह॥ ९.२९
९९–दुराचारी मोकूं भजे, भजे आन को नाइ।
ताको तू साधूंहि गिनो, शुभ निश्चय के दाइ॥ ९.३०
१००–वेगि होए धर्मात्मा, शान्ति लहत सुख पाइ।
अर्जुन निश्चय जान तू, नहि मो भक्त न साइ॥ ९.३१
१०१–अर्जुन सेवत मोहि जो, पापयोनि हूं कोइ।
स्त्री शूद्र और वैश्य पुनि, ताहि परम गति होइ॥९.३२
१०२–द्विज पुनीति औ भक्त वर, क्यों न तरें ऋषिराज।
सुख अनित्य या लोक को, भजो मोहि चित साज॥ ९.३३
१०३–मोकुं भजै मनमान ते, पूजै मन की आस।
याहि युक्ति मों से मिले, पुरवै मन की आस॥ ९.३४

(ड)—सब जगत ईश्वर की विभूति है

(श्री भगवानुवाच)

१०४—मैं ही ईश्वर जगत का मो हीं तें सब होइ।
ज्ञानवन्त यह जानि कै, मोकू सेवत जोइ ॥ १०.८

१०५—सब जीवन के हीय में, आतम मोको जान।
आदि अन्त औ मध्य में, मो ही में सब मान ॥१०.२०

१०६—सब जीवन को जीव हूं अर्जुन मोको जान।
थिरचर या संसार में, बिनु कछू न मान ॥ १०.३६

१०७—जो कुछ इह संसार में होवे गुनि अधिकाइ।
१०८—सो सब मेरो तेज है, दीनौ तोहि बताइ ॥ १०.४१
बहुत कहा तोसूं कहूं, अर्जुन बात चलाइ।
सब जग अपने अस सो, राख्यो मैं ठहराइ ॥ १०.४२

(ढ)—ईश्वर की स्तुति।

(अर्जुन उवाच)

१०९—पुरुष पुरातन आदि हो, तुम ही जगत निधान।
तुम यह सब जग विस्तरौ, जानत तुम ही ज्ञान ११.३८

११०—आगे मैं तुमको नमूं पाछे नमूं अनन्त।
सब दिश मैं तुमको नमूं, सब में सब भगवन्त ॥ ११.४०

१११—पिता जु सब संसार के तुम ही हो गुरु ईस।
तुम पटुतर को नाहिं है, कर कौन तुव रीस ॥ ११.४३

११२—कर जोरि जु विनती करूं छमो दोष जो मोहि।
ज्यों पिता सुत पति त्रिया, मित्र मित्र को जोहि ॥ ११.४४

(श्री भगवानुवाच)

(त) सच्ची भक्ति का स्वरूप।

११३—मो निमित्त कर्मनि करे, सजैं भगति तजि और।
बैर न काहू सों धरैं, मोमें लहैं सुठौर ॥११.५५

(थ)—भगवान को कैसा भक्त प्यारा है।

(श्री भगवानुवाच)

११४—जो मोमें मन राखि कै, सेवक सेवत भाइ।
बहु श्रद्धा से योग-युत, ताहि मतै अधिकाइ ॥ १२.२

११५—सब जीवन को हित करै, मोहि मिलत यह मान ॥ १२.४
सब जीवन को हित करै, मोहि मिलत यह मान ॥

११६—ज्ञान भलो अभ्यास ते, ताते ध्यान विसेख।
फल-त्याग ताते भलो ताते शान्ति सुलेख ॥ १२.१२

११७—द्वेष न काहूं सूं करे, करुणा मित्र जो होइ।
अहंकार ममता तजै, दुख-सुख सहै जु कोइ ॥ १२.१३

११८—सदा रहे संतोष से, मन राखे निजि हाथि।
ज्ञान ध्यान मोमे धरे, अति प्यारो मो साथि ॥ १२.१४

११९—जो काहू ते ना डरे, भय ओरें नहिं देत।
हर्ष शोक दोउ तजै मोको लागे हेत ॥ १२.१५

१२०—चाह न काहू की करै, मन पुनीत तजि आस।
सब आरभनि को तजै, प्यारो मेरो दास ॥ १२.१६

१२१—प्रिय पाये आनंद नहिं, अप्रिय लहै न दोष।
कांक्षा सोचउ ना करै, तजि शुभ अशुभ विशेष ॥ १२.१७

१२२—शत्रु मित्र को सम गिनै, तथा मान अपमान।
शीत उष्ण सुख दुख तजै, संग करै नहिं आन ॥ १२.१८

१२३—अस्तुति निन्दा एक सी, गहै मौन संतोष।
घर न फंसे थिरमत रहै, पीये प्रेम पीयोष ॥ १२.१९

१२४—अमृत धर्म जु में कह्यो, ताहि जो सेवे कोइ।
श्रद्धायुत मेरो भगत, मोकूं प्यारो होइ ॥ १२.२०

(द)—अपने आप को पहचानो,—"मैं कौन हूँ"

(श्री भगवानुवाच)

१२५—मेरो रूप जो आतमा, बसत सबन की देह।
यहै ज्ञान जो जानिये, जानौ मोको लेह ॥

१२६—साक्षी भर्ता भोगता, अनुमन्ता है जोइ।
देह सुं न्यारो या पुरुष, परमातम है सोइ ॥ १३.२२

१०७—ईश्वर है सब जन्तु में, बैठौ एक समान।
तिन्हें नसत विनसै नहीं, जो जाने सो जान ॥१३.२७

१२८—ईश्वर को सब ठौर जो, जानत समथिर भाइ।
आतमहिंसा नहिं करै, रहत परमगति पाइ ॥ १३२८

१२६—आदि अंत सों रहित है, निर्गुण आतम सोइ।
देह मांझ रहतै तऊ करे न लिम्पत होइ ॥१३.२८

१३०—ज्यों प्रकाश एकै करै, सब जग सूरजदेव।
त्योंही सब की देह में परमातम को भेव १३.३१

(घ)—काम-वासना को छोड़ कर शास्त्र विधि का पालन करो।

१३१—द्वार नरक के तीन हैं, करते आतम नास।
काम क्रोध औ लोभ जो, इन छांड़े सुखबास ॥१६.२१

१३२—तीन द्वार जो नरक के, तिनते छुटै जु कोइ
जनत करै कल्याण को, तबहिं परम गति होइ ॥ १६.२२

१३३—शास्त्र-विधि को छोड़ के, करत कामवश कर्म।
सिद्धि लहै नहिं परम गति, पड़े रहैं नित भर्म ॥१६.२३

१३४—ताते काज अकाज में मानों शास्त्र-प्रमाण।
कर्म करो तुम जानि के, तिन की विधि सुविधान ॥१६.२४

(न)—श्रद्धा

१३५—जैसी जो कु सुभाव है, तैसी श्रद्धा होइ।
श्रद्धा का नर पूतला, जस श्रद्धा तस सोइ ॥ १७.३

(प)—शरणागति तथा ईशप्रसाद ।

(श्री भगवानुवाच)

१३६—फल छाडै संगहि तजै, धर्म-बुद्धि चित लाइ ।
अर्जुन यह मेरो जु मत, उत्तम निश्चय दाइ ।। १८.६

१३७—अपने-अपने कर्म तें, सिद्धि लहै सब कोइ ।
सो विधि अब मोपै सुनो, कर्म–सिद्धि जो होइ ।। १८.४५

१३८—जाते उपजत जीव सब, जन कीनो विस्तार ।
स्वकर्म करि ताको भजे, सिद्धि लहै नर सार ।। १८.४६

१३९—युक्त रहत शुध बुद्धि में, धीरज सूं मन धारि ।
शब्द आदि विषयन तजै राग द्वेष कुंमारि ।। १८.५१

१४०—रहै दूर एकांत में, लघु-भोजन मन जीति ।
ध्यान योग तत्पर सदा, यह वैराग की रीति १८.५२

१४१—क्रोध परिग्रह काम बल, दर्प औ अहंकार ।
ममता तजि निर्मल रहै, शांति ब्रह्म में सार ।। १८.५३

१४२—ब्रह्म-लीन प्रसन्न मन, शोच न करै न चाह ।
सब जीवन को सम लखै, पावै भक्ति प्रवाह ।। १८.५४

१४३—मेरो कर्महिं नित्य करि,मेरो आसर पाइ ।
मेरो प्रसाद तें सो लहै, अक्षय पदवी जाइ ।। १८.५६

१४४—अर्चन पूजन वन्दना, मेरि करै चित लाइ ।
मो में प्यारो आ मिलै, सांच कहूं बतलाइ ।। १८.६५

१४५-सबै धरम तू त्यागि इक, मोरि शरण में आव ।
मैं सब पाप छिमा करूं, सोंच न मन में लाव ।।१८.६६

१४६—कृष्ण-योग अर्जुन-धनुष, बसत रहैं जा ठौर ।
नीति विजय श्री संपदा, नित्त बसैं वा ठौर ।। १८.७८

।। इति श्री ।।